॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

७७

श्रीनारायणपण्डितसंगृहीतः

हितोपदेश-सुहृद्भेदः

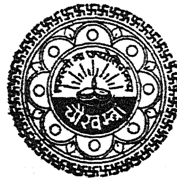
'किरणावली' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतः

संस्कृतव्याख्याकारः

पण्डित हरगोविन्द शास्त्री

हिन्दीव्याख्याकारः

पण्डित प्रद्युम्नपाण्डेयः



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

No year

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : सप्तम्, वि० स० २०५६

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता
के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो.बा. १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन- आफिस : ३३३४५८, निवास : ३३४०३२, ३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

कृष्णदास अकादमी

पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक
पो.बा. नं. १११८
के. ३७/११८, गोपाल मंदिर लेन
वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ३३५०२०

संपादकीय

हितोपदेश व्यावहारिक, लौकिक, नैतिक, सामान्य नैतिक एवं राजनीतिक ज्ञान से पूर्ण छोटी-छोटी कथाओं का एक अत्यन्त हृदयग्राही संग्रह है, जो सुकुमार बुद्धिवाले बालकों में उक्त संस्कारों का बीजारोपण करने में अत्यन्त ही सशक्त एवं समर्थ है। इसका रचनाकाल १४ वीं शताब्दी है। इसके संग्रह-कर्ता नारायण पंडित हैं जिनके आश्रयदाता बंगाल के राजा धवलचंद्र थे। कुछ लोग इसे विष्णुशर्मा प्रणीत मानते हैं; किन्तु यह भ्रम उन्हें इसलिए हुआ है कि इसमें भी पञ्चतंत्र के समान कथा-वाचक विष्णुशर्मा ही हैं।

इसके रचयिता ने इसे 'संस्कृतोक्तिषु पाटवम्' (संस्कृत बोलने में पटुता) 'सर्वत्र वाचाम् वैचित्र्यम्' (वाणी में विचित्रता) तथा 'नीतिविद्या' देने वाला बताया है और है भी यह पूर्णरूपेण अनुभूत सत्य। संस्कृत भाषा के परिज्ञान का सचमुच इतना सुलभ एवं सरल साधन कोई नहीं है। गहन से गहन विषयों की इतनी सरल तथा आकर्षक व्याख्या अन्यत्र दुर्लभ है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण यह ग्रन्थ सस्कृत पाठ्य-क्रमों में प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए प्राय: सर्वत्र स्वीकृत है।

'सुहृद्भेद' इसी हितोपदेश का एक अंश है, जिसमें राजकर्मचारियों के कर्तव्यों, राजाओं की नीतिरीतियों, प्रजा, कर्मचारियों एवं राजा के बीच के सम्बन्धों आदि प्रासंगिक व्यवहारों की मीमांसा के साथ ही स्थान-स्थान पर सामान्य जीवनविधियों का निरूपण करते हुए 'मित्रों में फूट पैदा करके अपने कार्य की सिद्धि' के उपाय बताये गये हैं। नित्यजीवन में इसका जितना मूल्य है उससे कहीं अधिक राजनीति में इसकी आवश्यकता है। राजा राष्ट्ररक्षा के लिए जहाँ ऐक ओर अन्य राज्यों से मैत्री (मित्रलाभ) करता है; वहाँ अपने शत्रु, दो मित्र राजाओं में फूट पैदा करके (सुहृद्भेद) उनकी संगठित शक्ति क्षीण कर देता है। 'सुहृद्भेद' में अन्य अवान्तर कथाओं के साथ एक ऐसी ही कथा का उल्लेख है, जिसमें दमनक और करकट ने पिंगलक और संजीवक में फूट पैदा करके अपना अधिकार पुनः प्राप्त किया था।

: — :

कथासार

मूलकथा

दक्षिण देश की सुवर्णवती नाम की नगरी में वर्धमान नाम का एक बनियाँ रहता था। वह व्यापार द्वारा अधिक धन प्राप्त करने की कामना से कश्मीर की ओर चला; किन्तु सुदुर्ग नाम के जङ्गल में उसकी गाड़ी का संजीवक नामक बैल घुटना टूट जाने से गिर पड़ा। वर्धमान उसे वहीं छोड़ कर आगे चला गया। संजीवक किसी प्रकार उठा और बहुत दिनों तक वहाँ स्वच्छन्द आहार बिहार के कारण महाबलिष्ट बन गया।

उसी जङ्गल में पिंगलक नाम का एक सिंह भी रहता था। वह वहाँ का राजा था। एक दिन वह पानी पीने के लिए यमुना के किनारे गया; किन्तु वहाँ संजीवक के अपूर्व शब्द को सुनकर बिना पानी पीये ही लौट आया और बैठ कर उस शब्द के बारे में विचार करने लगा। उसके प्रधान मंत्री के लड़के दमनक और करकट ने उसे इस स्थिति में देखा। दमनक ने उसकी इस स्थिति से लाभ उठाने का संकल्प किया और करकट से विमर्श करने के बाद उसके पास पहुँचा। बातचीत के प्रसंग में सिंह ने अपने भयभीत होने का कारण बता दिया। दमनक उसके सामने भय का कारण दूर करने की प्रतिज्ञा करके करकट के पास लौट आया।

दोनों साथ-साथ संजीवक के पास पहुँचे। दमनक ने उसे साम; दाम, दण्ड, भयादि से अपने वश में कर लिया और सिंह के सामने उपस्थित किया। सिंह ने उसे अभयदान देकर अपने पास रख लिया और दमनक तथा करकट को इस उपकार के बदले विशेष अधिकार दे दिया; किन्तु अधिकार के मद में दोनों अत्यन्त स्वच्छन्द हो गये और मनमानी करने लगे।

एक दिन पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण आया। पिंगलक उसके भोजन की व्यवस्था में शिकार के लिए जा रहा था कि संजीवक ने पहले के किये गये शिकार के बारे में उससे पूछा। वार्तालाप के प्रसंग मे सिंह ने दमनक और करटक की मनमानी का उल्लेख किया जिसे सुनकर स्तब्धकर्ण ने कर्मचारियों के अधिकार की व्याख्या करते हुए पिंगलक से कहा कि 'अर्थाधिकार' इस तृणभोजी संजीवक को देना चाहिए। पिंगलक ने उसकी बात मान ली और संजीवक को अर्थाधिकारी बना दिया। उसने व्यय को संयमित कर दिया जिससे दमनक और करकट दोनों को बड़ा बुरा लगा और दोनों ने संजीवक तथा पिंगलक की मैत्री में फूट डालने का निश्चय कर लिया।

दमनक एक दिन पिंगलक के पास पहुँचा और उसे समझाया कि आपने संजीवक को जो इतना अधिकार दे दिया है, उसका बड़ा बुरा फल होने वाला

है। सेवक धर्म के नाते मैं आपको आगाह कर दे रहा हूँ। वह आप पर बलप्रयोग करके आपके राज-पद को छीनना चाहता है अतः आप अनर्थ होने के पहिले सावधान हो जायें। सिंह ने यह सुन कर कहा—'तो क्या उसे निकाल दिया जाय ?' इस 'मंत्रभेद' का भय दिखाते हुए दमनक ने कहा—'अभी नहीं। वह स्वयं आपसे युद्ध करने आयेगा उस समय आप मुँह खोले पंजों का प्रहार करने के लिए उद्यत बैठे रहियेगा।' ऐसा कहकर वह संजीवक के पास पहुँचा और उससे कहा कि स्वामी तुम्हें मारना चाहते हैं अतः सींग टेढ़ी किये गरजते हुए तुम भी उनके सामने जाओ अपने बल का प्रदर्शन करो। संजीवक उसके बताये हुए ढंग से पिंगलक के पास पहुँचा। पिंगलक ने क्रुद्ध होकर उस पर आक्रमण कर दिया और उसे मार डाला। इस प्रकार दमनक और करकट ने 'सुहृद्भेद' के द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध किया और गत अधिकार को पुनः प्राप्त कर लिया।

प्रासंगिक कथाएँ

१. कीलोत्पाटिवानर-कथा

मगध देश में शुभदत्त नाम का कायस्थ विहार बनवा रहा था। वहाँ बढ़इयों ने आधी फटी हुई लकड़ी में एक कील डाल कर छोड़ दिया था। एक दिन एक बन्दर ने आकर उस कील को पकड़ लिया और वहीं बैठ गया। बैठते समय उसका अण्डकोश लकड़ी के बीच में चला गया। उसने चंचलता से कील को खींच लिया जिससे उसका अंडकोश दब गया और वह मर गया। अतः मनुष्य को व्यर्थ कार्यों में नहीं लगना चाहिए।

२. चीत्कारकारि-गर्दभ-कथा

काशी में कर्पूरपुरटक नाम का एक धोबी था। वह एक दिन गहरी नींद में सोया था कि कुछ चोर उसके घर में घुस गये। आंगन में बन्धे हुए गदहे ने वहीं बैठे हुए कुत्ते से कहा कि तुम भूंक कर स्वामी को जगा दो क्योंकि वही तुम्हारा काम है। लेकिन धोबी से अपमानित कुत्ते ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। तब गदहा स्वामी को जगाने के लिए स्वयम् चिल्लाने लगा। धोबी की नींद उचट गई और उसने गदहे को इतना मारा कि वह मर गया। अतः दूसरे के अधिकार की चर्चा भी नहीं करनी चाहिए, काम करना तो दूर की बात है।

३. दधिकर्ण-विडाल-कथा

अर्बुद पहाड़-शिखर पर दुर्दान्त नाम का एक सिंह था। उसके सोने के समय एक चूहा निकल कर उसका अयाल काट देता था। इसलिए उसने दधिकर्ण नाम का एक बिलार पाल लिया और भोजनादि से उसका बड़ा सत्कार करने लगा। अब चूहा भी उसके डर से बाहर नहीं निकलता था जिससे सिंह सुख से सोता था। एक दिन भूख से व्याकुल होकर चूहा बाहर निकला तो बिलार ने उसे मार डाला। अब सिंह ने बिलार की आवश्यकता न समझ कर उसके भोजनादि में कटौती कर दी, जिससे वह धीरे-धीरे दुर्बल हो कर मर गया। अतः सेवक को चाहिए कि वह स्वामी को कभी भी अपने प्रति निरपेक्ष न होने दे।

४. घंटाकर्ण-कुट्टनी कथा

श्रीपर्वत पर ब्रह्मपुर नाम का एक नगर था। वहाँ घंटा चुराकर भागने वाले एक चोर को सिंह ने मार डाला। उक्त घंटे को बन्दरों ने ले लिया और उसे बजाना शुरू किया। उस मरे हुए चोर को देख और घंटे की आवाज सुन कर नगर के सभी लोग घंटाकर्ण भूत के डर से भागने लगे। एक कुट्टनी ने इस रहस्य का पता लगा लिया और वह राजा से बोली—राजन्, यदि आप कुछ खर्च करें तो मैं घंटाकर्ण को वश में कर लूंगी। राजा ने उसे धन दे दिया। वह कुछ फल लेकर वहाँ गई और उन्हें फेंक दिया। बन्दर घंटा छोड़ कर फल खाने लगे। कुट्टनी घंटा लेकर चली आई। राजा ने उसे बहुत पुरस्कृत किया। इसलिए केवल शब्दमात्र से नहीं डरना चहिए।

५. स्वर्णरेखा तथा नापितगोपवधू-कथा

कञ्चनपुर नाम के नगर में एक राजा था। उसके सिपाही एक नाई को पकड़ कर मारने के लिए ले जा रहे थे कि एक साधु के साथ आने वाले कन्दर्पकेतु ने उसे बचा लिया और कहा—मैं सिंहल द्वीप का राजपुत्र हूँ मैंने एक दिन नाविकों के मुँह से सुना कि समुद्र में चतुर्दशी के दिन एक सुन्दरी कन्या दिखाई पड़ती है। यह सुनकर मैं वहाँ गया और उसे देखते ही उसके रूप पर आसक्त होकर समुद्र में कूद पड़ा। इसके बाद मैंने उसे सोने के महल में देखा और उससे विवाह कर लिया। एक दिन उसने मुझे चित्र में बनी सुवर्णरेखा अप्सरा को छूने के लिए मना किया किन्तु मैंने उसे छू दिया। छूते ही उसने मुझे ऐसा झटका दिया कि मैं अपने देश में आ गिरा। तभी से संन्यासी बन कर घूम रहा हूँ। एक दिन मैं एक ग्वाले के घर में सोया था।

उस समय जब ग्वाला पशुओं को खिला-पिलाकर घर लौटा तो उसने अपनी स्त्री को एक दूती से बातचीत करते हुए देखकर उसे खम्भे में बाँध दिया और सो गया। रात को फिर दूती ने आकर अपने को खंभे में बाँध दिया और ग्वालिन को नाई के पास भेज दिया। ग्वाले ने आँख खुलने पर फिर ग्वालिन से कहा कि अब क्यों नहीं अपने जार के पास जा रही हो। कुछ उत्तर न पाकर क्रुद्ध होकर उसने उसकी नाक काट ली और फिर सो गया। ग्वालिन नाई के यहाँ से लौट कर नाइन को बंधन मे खोल कर फिर अपने को उसमें बाँध दिया। नाइन अपने घर लौट गई। प्रातः काल जब नाई से अपनी पेटी माँगी तो उसने केवल छूरा दिया जिससे उसने छुरा उसके ऊपर चला दिया। इस पर अपनी नाक काट लेने का दोष लगा कर नाइन उसे अदालत में ले गई। इधर जब ग्वाला उठा और उसने अपनी स्त्री से पूछा तो उसने उसे डाँटते हुए कहा कि मैं सती हूँ, देखो उसी के प्रभाव से मेरी कटी हुई नाक जुड़ गई है। ग्वाला इसे देखकर उसके पैरों पर गिर गया।

उसने साधु की कथा कहते हुए कहा कि यह एक दिन वेश्या के घर में सोया था। इसने वेश्या के द्वार पर काठ के एक बैताल की मूर्ति देखी जिसके सिर पर रत्न था। लालच में आकर उसने इसे लेना चाहा; किन्तु पुतले ने उसे पकड़ लिया। उसका चिल्लाना सुनकर वेश्या ने कहा कि तुम्हारे पास जो भी रत्न हो दे दो, तभी छूट सकते हो। सभी रत्नों के देने के बाद ही यह बेचारा छूट पाया था। अतः मनुष्य अपने ही कर्मों का फल भोगता है।

६. गोपीजारद्वय कथा

द्वारवती में एक ग्वाले की एक कुलटा स्त्री थी। वह गाँव के मुखिया और उसके लड़के के साथ फँसी हुई थी। एक दिन जिस समय मुखिया का लड़का उसके पास था उसी समय मुखिया भी आया। ग्वालिन ने उसे अनाज की खत्ती में छिपा दिया और वह मुखिया के साथ आनन्द लूटने लगी। इसी समय ग्वाला भी आ गया। तब ग्वालिन ने उससे कहा कि तुम डण्डा लेकर क्रोध से बड़-बड़ाते हुए घर से निकल जाओ। ग्वाले ने उसे इस प्रकार जाते हुए देखकर पूछा कि यह किस लिए आया था। ग्वालिन ने कहा कि यह अपने लड़के को मारने के लिए दौड़ाया था वह भाग कर मेरे घर में चला आया। जिसे मैंने छिपा दिया। यह उसे न पाकर क्रोध में बड़-बड़ाता हुआ जा रहा है यह कहकर उसने उसके लड़के को दिखा दिया। इस प्रकार उसने सबको संकट से बचा लिया। अतः समयानुसार बुद्धि द्वारा मनुष्य कठिनाइयों को जीत सकता है।

७. काकी-कृष्णसर्प कथा

एक वृक्ष पर कौवा का एक जोड़ा रहता था। उसी वृक्ष की जड़ में एक काला साँप भी रहता था। वह कौवी के बच्चों को खा जाया करता था। एक दिन काकी ने वहाँ से दूसरी जगह चलने को कहा तब कौवे ने कहा कि डरो मत, तुम बुद्धि से काम लो। राजा रोज इस तालाब में स्नान करने आता है तुम उसके उतारे हुए सोने के हार को उठाकर साँप के खोखले में रख दो। कौवे ने ऐसा ही किया। फिर हार को खोजते हुए राजा के सिपाही पेड़ के खोखले के पास पहुँचे और वहाँ काले साँप को दखकर उन्होंने मार डाला। अर्थात् कोई काम बुद्धि के द्वारा ही आसानी से पूरा किया जा सकता है।

८. दुर्दान्तसिंह-शशक कथा

मन्दर नाम के पहाड़ पर दुर्दान्त नाम का सिंह था। उसे दिन भर में कई पशुओं को मारते हुए देखकर सभी पशुओं ने प्रतिदिन एक-एक पशु भेजने का निश्चय किया। सिंह ने भी इसे मान लिया। एक दिन एक बुड्ढे खरगोश की बारी आई। खरगोश उसके मारने का उपाय सोचते हुए उसके पास देर से पहुँचा। सिंह के पूछने पर उसने बताया कि इस जंगल में रहने वाले दूसरे सिंह ने मुझे पकड़ लिया था। मैं उससे कसम खाकर आपके पास सूचना देने आया हूँ। सिंह यह सुनकर आग-बबूला हो गया और दूसरे सिंह को मारने चल पड़ा। खरगोश ने एक कुँए में उसी की परछाईं को दिखा दिया। सिंह बिना सोचे कुएँ में कूद पड़ा और मर गया। अत: बुद्धि का बल सबसे बड़ा बल होता है।

९. समुद्र-टिट्टिभ कथा

दक्षिण समुद्र के किनारे टिटिहरियों का एक जोड़ा रहता था। समुद्र बराबर टिटिहिरी के अंडों को बहा ले जाया करता था। एक बार टिटिहरी ने बच्चा देने के समय टिटिहरे से दूसरी जगह चलने को कहा। लेकिन टिटि-हरा वहीं रहा। अबकी बार भी समुद्र अंडे को बहा ले गया, तब टिटिहरा सभी पक्षियों की सभा करके गरुड़ के पास गया। उन्होंने विष्णु से कहा और विष्णु ने समुद्र को आदेश दिया कि अंडों को लौटा दो। समुद्र ने उनकी आज्ञा से अंडे लौटा दिये। अत: किसी की शक्ति का अनुमान उसके सगे सम्बन्धियों को जान कर ही लगाया जा सकता है।

॥ श्रीः ॥

हितोपदेशः



सुहृद्भेदः

अथ राजपुत्रा ऊचुः—'आर्य, मित्रलाभः श्रुतस्तावदस्माभिः। इदानीं सुहृद्भेदं श्रोतुमिच्छामः।' विष्णुशर्मोवाच—'सुहृद्भेदं तावच्छृणुत यस्यायमाद्यः श्लोकः—

मणिप्रभा

गणनाथं प्रभानाथं रमानाथमुमापतिम्।
उमां च नत्वा कुर्वेऽहं सुहृद्भेदे मणिप्रभाम्॥ १॥

अथ=मित्रलाभश्रवणानन्तरम्, इदानीम्=अधुना, सुहृद्भेदम्=एतन्नामकं हितोपदेशस्य द्वितीयं प्रकरणम्, शृणुत—यूयमिति शेषः। आद्यः=प्रथमः।

हिन्दी रूपान्तर

इसके पश्चात् उन राजपुत्रों ने कहा—'आर्य', हम लोगों ने 'मित्रलाभ' तो सुन लिया अब 'सुहृद्भेद' सुनना चाहते हैं। विष्णुशर्मा ने कहा—तो 'सुहृद्भेद' सुनो। जिसका पहला श्लोक यह है—

वर्धमानो महान् स्नेहो मृगेन्द्रवृषयोर्वने।
पिशुनेनातिलुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः॥ १॥

अन्वयः—वने मृगेन्द्रवृषयोः वर्द्धमानः महान् स्नेहः पिशुनेन अतिलुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः॥ १॥

वर्द्धमानः—वर्द्धत इति वर्द्धमानः एधमानः, स्नेहः=प्रेम, मृगेन्द्रवृषयोः=सिंहवृषभयोः, पिशुनेन=कर्णजपेन (चुगली करनेवाले), जम्बुकेन=शृगालेन॥

वन में सिंह एवं बैल के बढ़ते हुए महान् स्नेह को अत्यन्त लालची तथा चुगली करने वाले स्यार ने नष्ट करा दिया॥ १॥

राजपुत्रैरुक्तम्—'कथमेतत्।' विष्णुशर्मा कथयति—

अस्ति दक्षिणापथे सुवर्णवती नाम नगरी। तत्र वर्धमानो नाम

वणिग्निवसति। तस्य प्रचुरेऽपि वित्तेऽपरान्बन्धूनतिसमृद्धान्समीक्ष्य पुनरर्थवृद्धिः करणीयेति मतिर्बभूव। यतः—

दक्षिणापथे=दक्षिणस्यां दिशि, तत्र=सुवर्णवत्यां नगर्याम्, तस्य=वर्द्धमाननाम्नो वणिजः, प्रचुरे=प्रभूते 'प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यम्' इत्यमरः, अपरान्=अन्यान् स्वसहवासिन इत्यर्थः, समीक्ष्य=दृष्ट्वा, अर्थवृद्धिः=धनवृद्धिः, मतिर्बभूव=विचारोऽभवत्। यतः=यस्मात्॥

राजपुत्रों ने पूछा—'ऐसा कैसे हुआ' विष्णुशर्मा ने कहा—'दक्षिण देश में सुवर्णवती नाम की एक नगरी है। वहाँ वर्धमान नाम का एक अत्यन्त धनी बनिया रहता था। बहुत अधिक धन होने पर भी, अपने अत्यन्त धनी बन्धुओं को देखकर उसे और भी अधिक धन बढ़ाने की इच्छा हुई। क्योंकि—

अधोऽधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते।
उपर्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति॥ २॥

अन्वयः—अधः अधः पश्यतः कस्य (जनस्य) महिमा न उपचीयते। उपरि उपरि पश्यन्तः सर्वे एव दरिद्रति॥ २॥

अधोऽधः=नीचैः नीचैः, पश्यतः=अवलोकयतः-(दृश् शतृ, षष्ठी ए० व०), महिमा=महत्त्वम्, उपचीयते=वर्द्धते। उपर्युपरि=उच्चैः उच्चैः, दरिद्रति=दरिद्रा भवन्ति (दरिद्रा लट् प्र० पु० ब० व०, 'जक्षित्यादयः षट्' इत्यभ्याससंज्ञायां 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति नुमभावः)॥

अपने से नीचे की ओर देखनेवाले किस मनुष्य का महत्त्व नहीं बढ़ जाता? किन्तु अपने से ऊपर देखनेवाले सभी दरिद्र दिखाई पड़ते हैं। (अपने से कम वित्तवालों को देखनेवाले अपने को धनी समझते हैं, किन्तु अपने से अधिक वित्तवालों को देखकर दरिद्र बन जाते हैं)॥ २॥

अपरं च—ब्रह्महापि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम्।
शशिनस्तुल्यवंशोऽपि निर्धनः परिभूयते॥ ३॥

अन्वयः—यस्य (नरस्य) विपुलम् धनम् अस्ति, (सः) ब्रह्महा अपि नरः पूज्यः (भवति), (किन्तु) शशिनः तुल्यवंशः अपि निर्धनः परिभूयते॥ ३॥

ब्रह्महा=ब्राह्मणघाती (ब्रह्माणं हतवान् इति विग्रहः), पूज्यः=पूजनीयः; विपुलम्=अधिकम्, शशिनः=चन्द्रस्य, परिभूयते=तिरस्क्रियते॥

और भी—जिसके पास अत्यन्त अधिक धन है, वह मनुष्य ब्रह्महत्या करने

भी अत्यन्त पूज्य होता है, किन्तु चन्द्रमा के समान उज्ज्वल वंश में जन्म लेकर भी निर्धन व्यक्ति सभी जगह अपमानित होता है ।। ३ ।।

अन्यच्च—अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्च परिहीनम् ।
प्रमदेव हि वृद्धपतिं नेच्छत्युपगूहितुं लक्ष्मीः ।। ४ ।।

अन्वयः—लक्ष्मीः अव्यवसायिनम् अलसम् दैवपरम् साहसात् परिहीनम् च (जनम्) प्रमदा वृद्धपतिम् इव उपगूहितुम् न इच्छति ।। ४ ।।

अव्यवसायिनम्=अनुद्योगिनम्, अलसम्=आलस्ययुक्तम्, दैवपरम्=भाग्याधीनम् (भाग्य पर ही भरोसा करनेवाले), प्रमदा=युवतिः, वृद्धपतिम्=प्रवयसं भर्तारम्, उपगूहितुम्=आलिङ्गितुम्, पक्षे आश्चर्यं कर्तुम् ।।

और भी—उद्योग रहित, आलसी, भाग्य के भरोसे रहने वाले एवं साहस से हीन व्यक्ति को लक्ष्मी उसी प्रकार आलिङ्गन करना नहीं चाहती है जैसे यौवन में मतवाली स्त्री बूढ़े पति को ।। ४ ।।

किं च—आलस्यं स्त्रीसेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् ।
सन्तोषो भीरुत्वं षड् व्याघाता महत्त्वस्य ।। ५ ।।

अन्वयः—आलस्यम्, स्त्रीसेवा, सरोगता, जन्मभूमिवात्सल्यम्, सन्तोषः, भीरुत्वम् (इति इमे) षट् महत्त्वस्य व्याघाताः (सन्ति) ।। ५ ।।

स्त्रीसेवा=स्त्रीविषयेऽधिकासक्तिः, सरोगता=रोगयुक्तता, जन्मभूमिवात्सल्यम्=जन्मभूम्या सह स्नेहः, तेन जन्मभूमिं त्यक्त्वाऽन्यत्र गमनाभावः, भीरुत्वम्=भयम्, व्याघाताः=बाधकाः ।।

और भी—आलस्य, स्त्री की गुलामी, रोगी बना रहना, जन्मभूमि के प्रति स्नेह, संतोष और डर—यही महत्त्व-प्राप्ति के छः विघ्न हैं ।। ५ ।।

यतः—संपदा सुस्थिरंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः ।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम् ।। ६ ।।

अन्वयः—यः स्वल्पया अपि सम्पदा सुस्थिरम्मन्यः भवन्ति, कृतकृत्यः विधिः तस्य ताम् न वर्द्धयति, (इति अहम्) मन्ये ।। ६ ।।

सम्पदा=धनेन, सुस्थिरम्मन्यः—आत्मानं सुस्थिरं मन्यते एवंविधः आत्मानं सुस्थिरं मन्यते इति विग्रहे 'आत्ममाने खश्च' इति खश्प्रत्यये खित्त्वान्मुमागमः,

कृतकृत्यः=कृतार्थः, विधिः=दैवम्, ताम्=सम्पदम् । मन्ये=(अहं) जानामि

क्योंकि–जो थोड़े ही धन से अपनी स्थिति को अच्छी समझनेवाला होत है उसका भाग्य भी कृतकृत्य होकर उसकी सम्पत्ति को नहीं बढ़ाता है ॥ ६ ।

अपरं च–निरुत्साहं निरानन्दं निर्वीर्यमरिनन्दनम् ।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—काचित् सीमन्तिनी निरुत्साहम्, निरानन्दम्, निर्वीर्यम्, अरिनन्दनम् पुत्रम् मा स्म जनयेत् ॥ ७ ॥

निरुत्साहम् (निर्गत उत्साहः यस्मात् स तम्=उत्साहहीनम्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । निर्वीर्यम्=पराक्रमहीनम्, अरिनन्दनम्=शत्रवे हर्षप्रदम्; सीमन्तिनी=नारी 'नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः । मा स्म जनयेत्=नोत्पादयेत् (अत्र 'मा' न तु 'माङ्' अतएव लुङ् नेति बोध्यम् ॥

और भी–उत्साहरहित, उदासीन और शत्रुओं को आनन्दित करनेवाले पुत्र को जन्म कोई भी स्त्री न दे ॥ ७ ॥

तथा चोक्तम्–अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेदवक्षयात् ।
रक्षितं वर्धयेत्सम्यग्वृद्धं तीर्थेषु निक्षिपेत् ॥ ८ ॥

अन्वयः—(उन्नतिकामुकः जनः) अलब्धम् (धनम्) लिप्सेत, लब्धम् अवक्षयात् रक्षेत्, रक्षितम् वर्द्धयेत्, वृद्धम् तीर्थेषु सम्यक् निक्षिपेत् च ॥ ८ ॥

लिप्सेत=लब्धुमिच्छेत्, अवक्षयात्=हानेः, तीर्थेषु=काशीप्रयागादि-तीर्थक्षेत्रेषु सत्पात्रेषु वा, निक्षिपेत्=दानं कुर्यात् ॥

जैसा कि कहा भी गया है–जो प्राप्त नहीं हो सका है, उसे पाने की इच्छा करनी चाहिए, जो प्राप्त हो चुका है, उसे नष्ट होने से बचाना चाहिए, बचाए हुए धन को बढ़ाना और बढ़े हुए धन को अच्छे कामों में लगाना चाहिए ॥

यतोऽलब्धमिच्छतोऽर्थयोगादर्थस्य प्राप्तिरेव । लब्धस्याप्यरक्षितस्य निधेरपि स्वयं विनाशः । अपि च । अवर्धमानश्चार्थः काले स्वल्पव्ययोऽप्यञ्जनवत्क्षयमेति । अनुपभुज्यमानश्च निष्प्रयोजन एव सः । तथा चोक्तम्—

अलब्धम्=अप्राप्तम्, अर्थयोगात्=वित्तसम्बन्धात्, अरक्षितस्य=अगुप्तस्य, निधेः=शेवधेः (शङ्खपद्मादयः नव निधयो भवन्ति) । अवर्द्धमानः=अवृद्धिशीलः

अर्थः = धनम्, काले = स्वल्पसमयानन्तरम्, अञ्जनवत् = अञ्जनेन तुल्यम्, क्षयमेति = नश्यति । अनुपभुज्यमानः = स्वोपभोगेऽनियुज्यमानः, निष्प्रयोजनः = व्यर्थः (इदमर्थस्य विशेषणमतः पुंस्त्वमत्रेति बोध्यम्) ॥

क्योंकि—अप्राप्त धन के चाहनेवाले व्यक्ति को धन लगाने से धन की प्राप्ति होती ही है । प्राप्त हो जाने पर भी यदि रक्षा न की जाय तो खजाना भी स्वयम् नष्ट हो जाता है । इसके अतिरिक्त यदि धन बढ़ाया न जाय तो वह थोड़ा खर्च करने पर भी अञ्जन के समान समय पाकर समाप्त हो जाता है और यदि उसका उपभोग न किया जाय तो उसका पाना ही व्यर्थ है । जैसा कहा गया है कि—

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते
बलेन किं यश्च रिपून्न बाधते ।
श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत्
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥ ९ ॥

अन्वयः—यः (जनः धनम्) न ददाति, न अश्नुते, (तस्य जनस्य) धनेन किम् (अस्ति) ? यः (जनः) रिपून् न बाधते, (तस्य) बलेन किम् (अस्ति) ? यः (जनः) धर्मम् न आचरेत् (तस्य जनस्य) श्रुतेन किम् (अस्ति) ? यः (जनः) जितेन्द्रियो न भवेत् (तस्य) आत्मना किम् (अस्ति) ॥

अश्नुते = भुङ्क्ते, भोगं करोतीत्यर्थः । बलेन = शक्त्या, रिपून् = शत्रून्, बाधते = पीडयति विजयते इत्यर्थः । श्रुतेन = शास्त्रज्ञानेन, आत्मना = आत्मज्ञानेन, जितेन्द्रियः = संयतेन्द्रियः । तस्य नरस्य धनादिकं सर्वं व्यर्थमस्ति, यः तेन दानादिकार्यं न करोतीत्याशयः ॥

उस धन के मिलने से क्या हुआ जो न तो दिया ही गया और न तो अपने ही उपयोग में लाया गया, उस बल से क्या हुआ जो शत्रुओं को वश में न कर सका, उन धर्म-ग्रन्थों के सुनने से क्या हुआ जिनके अनुसार धर्म का आचरण न हो सका और उस आत्मा से क्या हुआ जो इन्द्रियों को जीत न सके ॥९॥

यतः-जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥ १० ॥

अन्वयः—घटः क्रमशः जलबिन्दुनिपातेन पूर्यते, सर्वविद्यानाम् च धर्मस्य च धनस्य स हेतुः (अस्ति) ॥ १० ॥

घटः = कलशः, क्रमशः = क्रमात्, जलबिन्दुनिपातेन = शनैः शनैः जलबिन्दुनिपतनेन, पूर्यते = पूर्णः भवति। सर्वविद्यानाम् = समस्तज्ञानानाम्। यथा शनैः शनैः जलस्य बिन्दूनां पतनेन घटः पूर्णः भवति, तथैव क्रमशः सर्वविद्यादयोऽपि अध्ययनादिना पूर्णा भवन्ति ॥

क्योंकि—जैसे एक-एक बूंद गिरने से धीरे-धीरे घड़ा भर जाता है उसी प्रकार सभी विद्याएँ, धर्म और धन भी धीरे ही धीरे बढ़ता है ॥ १० ॥

दानोपभोगरहिता दिवसा यस्य यान्ति वै।
स कर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥ ११ ॥

अन्वयः—यस्य (जनस्य) दिवसाः दानोपभोगरहिताः यान्ति, स (जनः) कर्मकारभस्त्रा इव श्वसन् अपि न जीवति ॥ ११ ॥

दानोपभोगरहिताः = त्यागोपभोगाभ्यां शून्याः, दिवसाः = दिनानि, यान्ति = व्यतियन्ति (बीतते हैं) कर्मकारभस्त्रेव = कर्मकारस्य लोहतापकचर्मनिर्मितयन्त्रविशेषः इव (भाथी के समान), श्वसन् = श्वासं गृह्णन् जीवन्नित्यर्थः, न जीवति = मृतकतुल्योऽस्ति ॥

जिनके दिन दान और भोग के विना ही चले जाते हैं; वह लुहार की भाथी के समान साँस लेते हुए भी जीवित नहीं कहा जा सकता ॥ ११ ॥

इति संचिन्त्य नन्दकसंजीवकनामानौ वृषभौ धुरि नियोज्य शकटं नानाविधद्रव्यपूर्णं कृत्वा वाणिज्येन गतः कश्मीरं प्रति। अन्यच्च—

इति = एतत्, धुरि = भारवहनकार्ये, नियुज्य = नियुक्तौ कृत्वा (नि + युज् + ल्यप्), शकटम् = अनः (गाड़ी को), नानाविधद्रव्यपूर्णम् = अनेकप्रकारकभरितम्, वाणिज्येन = व्यापाराय, कश्मीरम् = एतन्नामकं भारतस्य पश्चिमोत्तरदिक्स्थितं प्रान्तविशेषम् ॥

इस प्रकार सोचकर नंदक और संजीवक नाम के दो बैलों को जोत में बाँध कर गाड़ी को तरह-तरह की वस्तुओं से भरकर व्यापार करने की इच्छा से कश्मीर की ओर चला। और भी—

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य च संचयम्।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥ १२ ॥

अन्वयः—(अभ्युदयेच्छुकः) अञ्जनस्य क्षयम् वल्मीकस्य सञ्चयम् च दृष्ट्वा दानाध्ययनकर्मभिः दिवसम् अवन्ध्यम् कुर्यात् ॥ १२ ॥

अञ्जनस्य=कज्जलस्य, क्षयम्=नाशम्, वल्मीकस्य=वामलूरस्य (बाँबी), सञ्चयम्=वृद्धिम्, अवन्ध्यम्=सफलम्, दानाध्ययनकर्मभिः=दानपठनादिकार्यैः (वृद्धिरहितमत्यल्पशः व्ययीभवदप्यञ्जनं क्षीयते, क्षयरहितं सततं स्वल्पशोऽपि उपचीयमानं वल्मीकं वर्द्धते इत्येतद् दृष्ट्वा धनदानं शास्त्रपठनं न कृत्वा मानवेन दिवसस्य साफल्यं कर्तव्यमिति भावः) ॥

आँखों में लगाये जानेवाले अञ्जन का धीरे-धीरे नष्ट हो जाना तथा बाँबी का धीरे-धीरे एकत्रित होकर बढ़ना देखकर मनुष्य को चाहिये कि वह अपने दिन को दान, अध्ययन तथा अन्य कर्मों से सफल करे ॥ १२ ॥

यतः—कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥ १३ ॥

अन्वयः——समर्थानाम् (जनानाम्) कः अतिभारः (अस्ति) ? व्यवसायिनाम् किम् दूरम् (अस्ति) ? सविद्यानाम् कः विदेशः (अस्ति) ?, प्रियवादिनाम् कः परः (अस्ति) ? ॥ १३ ॥

अतिभारः=महाभारः, भारयुक्तम्–असाध्यमित्यर्थः; समर्थानाम्=सामर्थ्यवताम्, व्यवसायिनाम्=उद्योगिनाम्, विदेशः=परदेशः, सविद्यानाम्=विदुषाम्, प्रियवादिनाम्=मधुरभाषिणाम् ॥

क्योंकि——शक्तिशाली के लिए कोई भी कार्य बोझ जैसा नहीं लगता, परिश्रमी व्यक्ति के लिए कोई भी स्थान दूर नहीं होता, विद्वान् के लिए कोई देश विदेश नहीं होता और प्रिय बोलने वाले का कोई भी शत्रु नहीं होता ॥१३॥

अथ गच्छतस्तस्य सुदुर्गनाम्नि महारण्ये सञ्जीवको भग्नजानुर्निपतितः । तमालोक्य वर्धमानोऽचिन्तयत्——

सुदुर्गनाम्नि=सुदुर्गनामके, महारण्ये=महावने; भग्नजानुः=भग्नं जानु यस्य सः (टूटे घुटनेवाला), निपतितः=अपतत्, अचिन्तयत्=चिन्तितवान् ॥

इसके पश्चात् जाते-जाते सुदुर्गनाम के एक बड़े जंगल में संजीवक का घुटना टूट गया और वह गिर पड़ा । वर्धमान ने उसे देखकर विचार किया——

करोतु नाम नीतिज्ञो व्यवसायमितस्ततः ।
फलं पुनस्तदेवास्य यद्विधेर्मनसि स्थितम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—नीतिज्ञः (नरः) इतस्ततः व्यवसायम् करोतु नाम पुनः अस्य फलम् तत् एव (भवति), यत् विधेः मनसि स्थितम् (वर्तते) ॥ १४ ॥

नीतिज्ञः--नीतिं जानातीति विग्रहे 'इगुपधज्ञा०' इति कः=नीतिपण्डितः इतस्ततः=यत्र तत्र (इधर-उधर), व्यवसायम्=उद्योगम्, फलम्=परिणाम विधेः=भाग्यस्य, मनसि=चित्ते ॥

चतुर व्यक्ति इधर-उधर कितना ही प्रयत्न क्यों न करें; परन्तु उसका फल वही होता है जो ब्रह्मा के मन में होता ॥ १४ ॥

किंतु--विस्मयः सर्वथा हेयः प्रत्यूहः सर्वकर्मणाम् ।
तस्माद् विस्मयमुत्सृज्य साध्ये सिद्धिर्विधीयताम् ॥ १५ ॥

अन्वयः--सर्वकर्मणाम् प्रत्यूहः (जनेन) सर्वथा हेयः (अस्ति) तस्मात् (जनेन) विस्मयम् उत्सृज्य साध्ये सिद्धिः विधीयताम् ॥ १५ ॥

विस्मयः=धैर्याभावः (घबड़ाहट), सर्वथा=सर्वैः प्रकारैः (सब तरह) हेयः=त्याज्यः, प्रत्यूहः=विघ्नः, उत्सृज्य=त्यक्त्वा (उत्+सृज्+ल्यप्), साध्ये=कार्ये, कर्तव्य इत्यर्थः, विधीयताम्=क्रियताम् ॥

किन्तु–विस्मय (किसी कार्य की बाधाओं को देखकर चकित हो जाना) का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये, क्योंकि वह सभी कार्यों का विघ्न होता है। इसलिए आश्चर्य को छोड़कर अपने द्वारा किये जानेवाले कार्य में सफलता प्राप्त करनी चाहिए ॥ १५ ॥

इति संचिन्त्य संजीवकं तत्र परित्यज्य वर्धमानः पुनः स्वयं धर्मपुरं नाम नगरं गत्वा महाकायमन्यं वृषभमेकं समानीय धुरि नियोज्य चलितः । ततः संजीवकोऽपि कथंकथमपि खुरत्रये भरं कृत्वोत्थितः । यतः—

इति=एतत्, सञ्चिन्त्य=विचार्य, परित्यज्य=सन्त्यज्य, वर्द्धमानः=एतन्नामकः वणिक्, महाकायम्=हृष्टपुष्टशरीरम्, धुरि नियोज्य=भारकार्ये नियुक्तं कृत्वा, कथङ्कथमपि=कथञ्चित्, खुरत्रये=त्रिषु खुरेषु, एकजानुभङ्गतयेति यावत्, उत्थितः=उत्थितवान् ॥

ऐसा सोचकर उसने संजीवक को वहीं छोड़ दिया और स्वयं धर्मपुर नाम के नगर में जाकर एक बड़े डील-डौल वाले दूसरे बैल को लाकर जोत में नाँध दिया तथा आगे चल पड़ा। कुछ देर बाद संजीवक भी अपने तीन ही खुरों पर बल देकर किसी प्रकार उठ खड़ा हुआ। क्योंकि--

निमग्नस्य पयोराशौ पर्वतात्पतितस्य च ।
तक्षकेणापि दष्टस्य आयुर्मर्माणि रक्षति ॥ १६ ॥

अन्वयः--आयुः पयोराशौ निमग्नस्य; पर्वतात् पतितस्य; तक्षकेण दष्टस्य च अपि (नरस्य) मर्माणि रक्षति ॥ १६ ॥

आयुः=वयः, जीवितावधिकालः (उम्र), पयोराशौ=समुद्रे, निमग्नस्य=त्रुडितस्य, तक्षकेण=एतन्नामकेन तीव्रविषेण सर्पेण, दष्टस्य=कृतदंशनस्य (डँसे गये), मर्माणि=मर्मस्थलानि, रक्षति=गोपायति ॥

समुद्र में भी डूबनेवाले, पर्वत से भी गिरे हुए तथा साँप द्वारा काटे गये व्यक्ति के प्राणों को भी आयु बचा लेती है ॥ १६ ॥

नाकाले म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि ।
कुशाग्रेणैव संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥ १७ ॥

अन्वयः--जन्तुः शरशतैः विद्धः अपि अकाले न म्रियते, (तथा) प्राप्तकालः (सन् सः) कुशाग्रेण एव संस्पृष्टः न जीवति ॥ १७ ॥

अकाले=मृत्युसमये अप्राप्ते, जन्तुः=प्राणी, देहधारीत्यर्थः, शरशतैः=अनेकशतसङ्ख्यकबाणैः, विद्धः=छिद्रितः ताडित इत्यर्थः, कुशाग्रेण=दर्भाग्रभागेनैव (कुश की नोक से), प्राप्तकालः=प्राप्तमृत्युसमयः ॥

और भी --सैकड़ों बाणों से बिंधा हुआ प्राणी भी बिना समय आये नहीं मर सकता, किन्तु समय आ जाने पर वही कुश की नोक से छू जाने पर भी नहीं बच सकता ॥ १७ ॥

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ॥१८॥

अन्वयः--(मानवादिना) अरक्षितम् (अपि) दैवरक्षितम् (वस्तु) तिष्ठति, (मानवादिना) सुरक्षितम् (अपि) दैवहतम् (वस्तु) विनश्यति । (एवमेव, मानवादिना) वने विसर्जितः अनाथः अपि जीवति (तथा मानवादिना) गृहे कृतप्रयत्नः अपि न जीवति ॥ १८ ॥

अरक्षितम्=मानवादिना अकृतरक्षणम्, दैवरक्षितम्=भाग्येन कृतरक्षणम्, तिष्ठति=न विनश्यति । दैवहतम्=भाग्येन विनष्टम्, विसर्जितः=त्यक्तः, कृतप्रयत्नः=मानवादिना कृतसुरक्षणः ॥

भाग्य जिसकी रक्षा करना चाहे तो दूसरों द्वारा अरक्षित होने पर भी वह बच जाता है, किंतु दूसरों द्वारा बचाने पर भी भाग्य का मारा हुआ नहीं बच सकता। जैसे जंगल में फेंका हुआ अनाथ बच्चा भी जीता रहता है, किन्तु अनेक प्रयत्नों के होने पर भी घर में पड़ा हुआ बालक नहीं जी पाता ॥१८॥

ततो दिनेषु गच्छत्सु संजीवकः स्वेच्छाहारविहारं कृत्वारण्यं भ्राम्यन् हृष्टपुष्टाङ्गो बलवन्ननाद। तस्मिन्वने पिङ्गलकनामा सिंहः स्वभुजोपार्जितराज्यसुखमनुभवन्निवसति। तथा चोक्तम्--

स्वेच्छाहारविहारम् = इच्छापूर्वकभोजनभ्रमणम्, हृष्टापुष्टाङ्गः = सुदृढशरीरः, बलवत् = उच्चस्वरेण, स्वभुजोपार्जितराज्यसुखम्-स्वभुजेन = आत्मभुजबलेन, उपार्जितस्य = प्राप्तस्य, राज्यस्य, सुखं=शर्म, अनुभवन्=प्राप्नुवन् ॥

कुछ दिन बीतने के बाद अपनी इच्छा के अनुसाहर आहार-विहार करने के कारण संजीवक के सभी अंग हृष्ट पुष्ट हो गये और वह अत्यन्त तेजी के साथ डकारें भरने लगा। उसी जगल में पिङ्गलक नाम का एक सिंह अपने पराक्रम से प्राप्त राज्यसुख का अनुभव करता हुआ निवास करता था। जैसे कहा भी है--

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगैः।
विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥ १९ ॥

अन्वयः--मृगैः सिंहस्य अभिषेकः (तथा) संस्कारः न क्रियते, (किन्तु) विक्रमार्जितराज्यस्य (तस्य मृगस्य) मृगेन्द्रता स्वयमेव (भवति) ॥ १९ ॥

अभिषेकः=राज्याभिषेकः, संस्कारः=शूरत्वादिगुणयोगः, मृगैः=वन्यपशुभिः विक्रमार्जितराज्यस्य--विक्रमेण=स्वभुजबलेन, अर्जितम्=उपार्जितम्, राज्यम्=साम्राज्यम्, येन स तस्य। स्वयमेव=स्वत एव, मृगेन्द्रता=मृगराजता ॥

जंगली पशुओं द्वारा सिंह का न तो अभिषेक ही किया जाता है और न संस्कार ही; किन्तु वह अपने पराक्रम से प्राप्त राज्य का स्वयम् राजा बन जाता है। १९।

स चैकदा पिपासाकुलितः पानीयं पातुं यमुनाकच्छमगच्छत्। तेन च तत्र सिंहेनाननुभूतपूर्वकमकालघनगर्जितमिव संजीवकनर्दितमश्रावि। तच्छ्रुत्वा पानीयमपीत्वा सचकितः परिवृत्य स्वस्थानमागत्य किमिदमित्यालोचयंस्तूष्णीं स्थितः। स च तथाविधः करटकदमनकाभ्यामस्य मन्त्रिपुत्राभ्यां दृष्टः। तं तथाविधं दृष्ट्वा दमनकः करटकमाह--'सखे करटक, किमित्ययमुदकार्थी स्वामी पानीयम-

पीत्वा सचकितो मन्दं मन्दमवतिष्ठते ।' करटको ब्रूते--'मित्र दमनक, अस्मन्मतेनास्य सेवैव न क्रियते । यदि तथा भवति तर्हि किमनेन स्वामिचेष्टानिरूपणेनास्माकम् । यतोऽनेन राज्ञा विनापराधेन चिर-मवधीरिताभ्यामावाभ्यां महद्दुःखमनुभूतम् ।

पिपासाऽऽकुलितः=तृष्णया व्याकुलः; पानीयम्=जलम्, यमुनाकच्छम्=यमुनायास्तीरम्, अननुभूतपूर्वकम्=प्रथममश्रुतम्, अकालघनगर्जितम्--अकाले=असमये प्रावृडभावेऽपीति भावः, घनस्य=मेघस्य, गर्जितम्=गर्जनम्, सञ्जीवकनर्दितम्=सञ्जीवकस्य गर्जितम्, अश्रावि=श्रुतम् ! सचकितः=आश्चर्यितः, परावृत्य=परवर्तितो भूत्वा, आलोचयन्=विचारयन्, तूष्णीम्=मौनः सन्, तथाविधः=तादृशः, पिपासाऽऽकुलत्वेऽपि सञ्जीवकनर्दितेन अपीतजलः; किमिति=कथम्, उदकार्थी=पिपासितः, अवतिष्ठते--अत्र 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम् । अस्मन्मतेन=स्वविचारेण, स्वामिचेष्टानिरूपणेन=स्वामिनो भयादिकारणविचारेण, विनापराधेन=अपराधं विनैव, चिरम्=चिरकालात्, अवधीरिताभ्याम्=तिरस्कृताभ्याम्, अनुभूतम्=प्राप्तम् ।।

वह सिंह एक बार प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के लिए यमुना नदी के किनारे गया । वहाँ असमय के बादलों की गर्जन के समान संजीवक की आवाज सिंह को सुनाई पड़ी । ऐसी आवाज उसने इसके पहले कभी नहीं सुनी थी । यह सुन कर बिना पानी पिये ही वह चकित होकर लौट पड़ा और अपने स्थान पर आकर, 'यह क्या है' ऐसा सोचता हुआ चुपचाप बैठ गया । उसके मंत्री के पुत्र करटक और दमनक नाम के दो स्यारों ने उसे इस अवस्था में देखा । उसे इस प्रकार की अवस्था में देखकर दमनक ने करटक से कहा—'मित्र, करटक, पानी चाहनेवाले यह मेरे स्वामी बिना पानी पिये ही क्यों लौटकर इस प्रकार उदासभाव से चुपचाप बैठे हैं ?' करटक ने कहा–मित्र दमनक, मेरे विचार से तो यह सेवा करने योग्य ही नहीं है, फिर इस प्रकार इस स्वामी की चेष्टा देखने से हम लोगों का लाभ भी क्या है ? क्योंकि इस राजा के द्वारा बिना किसी अपराध के ही हम दोनों अपमानित होकर बहुत दिनों से कष्ट झेलते चले आ रहे हैं ।

सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम् ।
स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम् ।। २० ।।

अन्वयः—(त्वम्) पश्य, सेवया धनम् इच्छद्भिः, सेवकैः यत् कृतम्, शरीरस्य यत् स्वातन्त्र्यम् (आसीत्), तत् अपि मूढैः हारितम् ।। २० ।।

सेवया=स्वामिन: सेवनेन, सेवकै:=भृत्यै:, स्वातन्त्र्यम्=स्वतन्त्रता, हारितम्=नाशितम् ।

सेवा द्वारा धन की अभिलाषा रखने वाले सेवकों ने जो किया; उसे देखो। उन मूर्खों ने उसके लिए अपने शरीर की स्वतंत्रता भी गँवा दी ॥ २० ॥

अपरं च--

शीतवातातपक्लेशान् सहन्ते यान् पराश्रिता: ।
तदंशेनापि मेधावी तपस्तप्त्वा सुखी भवेत् ॥ २१ ॥

अन्वय:--पराऽऽश्रिता: यान् शीतवातातपक्लेशान् सहन्ते, मेधावी तदंशेन अपि तप: तप्त्वा सुखी भवेत् ॥ २१ ॥

शीतवातातपक्लेशान्--शीतश्च=अनुष्णत्वञ्च, वातश्च=वायुश्च; आतपश्च=घर्मश्च इति शीतवातातपा: तेषां क्लेशान्=दु:खानि; पराश्रिता:=पराधीना:, सेवका इत्यर्थ:, तदंशेन=शीतादिजन्यदु:खस्य स्वल्पतमभागेन, मेधावी=बुद्धिमान्, तपस्तप्त्वा=तपस्यां कृत्वा ॥

और भी-दूसरों के अधीन रहनेवाले शीत, वायु तथा धूप आदि के जिन दु:खों को झेलते हैं, उसके अंशमात्र दु:खों को ही सहकर बुद्धिमान् तप करके सुखी हो जाता है ॥ २१ ॥

अन्यच्च--एतावज्जन्मसाफल्यं यदनायत्तवृत्तिता ।
ये पराधीनतां यातास्ते वै जीवन्ति के मृता: ? ॥ २२ ॥

अन्वय:--यत् (जनस्य) अनायत्तवृत्तिता (भवति), एतावत् जन्मसाफल्यम् (अस्ति), ये (जना:) पराधीनताम् याता: (सन्ति, यदि) ते जीवन्ति, (तर्हि) के (जना:) मृता: सन्ति ? ॥ २२ ॥

जन्मसाफल्यम्=जन्मन: सफलता, अनायत्तवृत्तिता=स्वतन्त्रजीवनम्; पराधीनताम्=परतन्त्रताम्, स्वतन्त्रस्यैव जनस्य जन्म सफलमस्ति, पराधीनास्तु जना मृतकतुल्या एवेत्याशय: ॥

और भी-जीविका का दूसरे के अधीन न होना ही इस जन्म की सच्ची सफलता है। यदि पराधीन व्यक्ति को ही जीवित माना जाय तो फिर मरा हुआ किसे कहा जायगा ॥ २२ ॥

अपरञ्च--एहि गच्छ, पतोत्तिष्ठ, वद, मौनं समाचर ।
एवमाशाग्रहग्रस्तै: क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभि: ॥ २० ॥

अन्वयः—धनिनः (त्वम्) एहि; गच्छ, पत, उत्तिष्ठ, वद, मौनं समाचर एवम् आशाग्रहग्रस्तैः अर्थिभिः (सह) क्रीडन्ति ॥ २३ ॥

एहि=आगच्छ, पत=पतनं कुरु, मौनं समाचर=तूष्णीभावं गच्छ, आशाग्रहग्रस्तैः=आशारूपपाशेन बद्धः, अर्थिभिः=अर्थाभिलाषुकैः सेवकैः, क्रीडन्ति=खेलन्ति ॥

और भी—आओ, जाओ, बैठो, उठो, बोलो, चुप रहो—इस प्रकार की आज्ञाएँ दे-देकर धनी लोग आशारूपी ग्रह से ग्रसित याचकों से अपना मनोविनोद करते रहते हैं ॥ २३ ॥

किं च—अबुधैरर्थलाभाय पण्यस्त्रीभिरिव स्वयम् ।
आत्मा संस्कृत्य संस्कृत्य परोपकरणीकृतः ॥ २४ ॥

अन्वयः—अबुधैः (जनैः) पण्यस्त्रीभिः इव अर्थलाभाय आत्मा संस्कृत्य संस्कृत्य स्वयम् परोपकरणीकृतः ॥ २४ ॥

अबुधैः=मूर्खैः, पण्यस्त्रीभिः=वेश्याभिः, आत्मा…कृतः=अलङ्कारादिशृङ्गारेण (पक्षे—विद्याज्ञानशौर्यादिना) शरीरं पुनः पुनः मण्डयित्वा ॥

और भी—मूर्खों ने धन के लिए वेश्याओं के समान अपने आप को सजा-सजा कर स्वयं ही उसे दूसरों के कार्य में लगा दिया है ॥ २४ ॥

किं च—या प्रकृत्यैव चपला निपतत्यशुचावपि ।
स्वामिनो बहु मन्यन्ते दृष्टिं तामपि सेवकाः ॥ २५ ॥

अन्वयः—(स्वामिनः=प्रभोः) प्रकृत्या एव चपला या दृष्टिः अशुचौ अपि निपतति, सेवकाः स्वामिनः ताम् अपि बहु मन्यन्ते ॥ २५ ॥

प्रकृत्यैव=स्वभावेनैव, अशुचौ अपि निपतति=अपवित्रमपि पश्यति, बहु मन्यन्ते=स्वामी मयि कृपादृष्टिं करोति इति मत्वा सेवकाः कृतार्था भवन्ति ॥

और भी—सेवक लोग स्वभाव से ही चंचल एवं अपवित्र स्थान में पड़नेवाली स्वामी की दृष्टि को भी बहुत बड़ी वस्तु समझते हैं ॥ २५ ॥

अपरं च—मौनान्मूर्खः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः ।
धृष्टः पार्श्वे वसति नियतं दूरतश्चाप्रगल्भः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ २६ ॥

अन्वयः—(स्वामिना सेवकः) मौनात् मूर्खः (अस्तीति गण्यते, एवं सर्वत्र योज्यम्), प्रवचनपटुः वातुलः वा जल्पकः, क्षान्त्या भीरुः, यदि न सहते (तदा) प्रायशः नाभिजातः, नियतम् पार्श्वे वसति (तदा) धृष्टः, च दूरतः (वसति तदा) अप्रगल्भः (एवम्) परमगहनः सेवाधर्मः योगिनाम् अपि अगम्यः ॥

मौनात् =तूष्णीभावात्, प्रवचनपटुः =अधिककथने चतुरः, वातुलः = वाचालः (बातूनी), जल्पकः =मुधाऽधिकवक्ता (बकवादी), क्षान्त्या = क्षमया, भीरुः =भययुक्तः (डरपोक), नाभिजातः =अकुलीनः, अप्रगल्भः = लज्जाशीलः, परमगहनः =अतिकठिनः, योगिनामपि =योगिवदधिकसहनशीलानामपि, अतीन्द्रियं पश्यतामपि, अगम्यः =सेवनेऽतिकठिनः, अज्ञेयश्च, पादत्रयोक्तकारणैः अतिकठिनं सेवाधर्मं परमसहिष्णवोऽपि सेवका निर्वोढुं न शक्नुवन्तीति भावः ॥

और भी—यदि सेवक चुप रहे तो स्वामी उसे मूर्ख, बात करने में चतुर हो तो बातूनी, सहनशील हो तो डरपोक, असहनशील हो तो अकुलीन, नित्य स्वामी के पास रहे तो ढीठ और दूर रहे तो कायर समझते हैं। इसलिए, सेवाधर्म अत्यन्त कठिन होता है जिसकी साधना योगियों के लिए भी दुःसाध्य होती है ॥ २६ ॥

विशेषतश्च—

प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवितहेतोर्विमुञ्चति प्राणान् ।
दुःखीयति सुखहेतोः को मूढः सेवकादन्यः ॥ २७ ॥

अन्वयः—सेवकात् अन्यः कः मूढः उन्नतिहेतोः प्रणमति, जीवितहेतोः प्राणान् विमुञ्चति, सुखहेतोः दुःखीयति ॥ २७ ॥

सेवकात् अन्यः =सेवकं विना, उन्नतिहेतोः =उन्नत्यर्थम्, पक्षे—उच्चैर्भवितुम्, प्रणमति =नमस्करोति, पक्षे०—नम्रो भवति, जीवितहेतोः =जीवितुम्, प्राणान् विमुञ्चति =म्रियते, सुखहेतोः =सुखलाभाय, दुःखीयति । सेवक एव स्वोन्नत्यै स्वामिनं प्रणमति, जीवितुं स्वाम्यर्थं प्राणत्यागमपि करोति तथा सुखप्राप्तये अनेकदुःखानि सहते, नान्य इत्यर्थः ॥

विशेष करके—सेवक अपनी उन्नति के लिए झुकता है, जीवित रहने के लिए मरता और सुख पाने के लिए दुःख उठाता है; अतः उससे बढ़कर और कौन दूसरा मूर्ख हो सकता है ॥ २७ ॥

दमनको ब्रूते—'मित्र सर्वथा मनसापि नैतत्कर्तव्यम् । यतः—

दमनक ने कहा—मित्र, मन से भी कभी ऐसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि—

कथं नाम न सेव्यन्ते यत्नतः परमेश्वराः ।
अचिरेणैव ये तुष्टाः पूरयन्ति मनोरथान् ॥ २८ ॥

अन्वयः—तुष्टाः ये अचिरेण एव (सेवकानाम्) मनोरथान् पूरयन्ति, (ते) परमेश्वराः सेवकैः कथं नाम यत्नतः न सेव्यन्ते ॥ २८ ॥

कथं नाम = कस्मात्कारणात्, यत्नतः = प्रयत्नपूर्वकम्, परमेश्वराः = स्वामिनः, तुष्टाः = सन्तुष्टाः ॥

उन स्वामियों की सेवा अत्यन्त यत्न के साथ क्यों नहीं करनी चाहिए, जो प्रसन्न होकर शीघ्र ही सारी अभिलाषाओं को पूरी कर देते हैं ॥ २८ ॥

अन्यच्च पश्य—

कुतः सेवाविहीनानां चामरोद्धूतसंपदः ।
उद्दण्डधवलच्छत्रं वाजिवारणवाहिनी ॥ २९ ॥

अन्वयः—सेवाविहीनानाम् (सेवकजनानाम्), चामरोद्धूतसम्पद, उद्दण्डधवलच्छत्रम् वाजिवारणवाहिनी च कुतः (प्राप्यते) ? ॥ २९ ॥

सेवाविहीनानाम् = स्वामिसेवनमकुर्वताम्, चामरोद्धूतसम्पदः—चामरेण उद्धूताश्च ताः सम्पदश्च = चामरसञ्चालनसूचितधनानि, उद्दण्डधवलच्छत्रम्—उत् = ऊर्ध्वं दण्डं यस्य तत् उद्दण्डम्, तच्च तत् धवलं = शुभ्रम् छत्रञ्च = राजत्वसूचकोर्ध्वीकृतशुभ्रातपत्रम्, वाजिवारणवाहिनी—वाजिनाम् = अश्वानाम्; वारणानाम् = हस्तिनां च वाहिनी = सेना ॥

और भी देखो—सेवा न करनेवाले सेवकों को भला चामरयुक्त लक्ष्मी, लम्बी डंडी वाला छत्र, घोड़े और हाथियों से युक्त सेना कैसे प्राप्त हो सकती है ? ॥ २९ ॥

करटको ब्रूते—'तथापि किमनेनास्माकं व्यापारेण । यतोऽव्यापारेषु व्यापारः सर्वथा परिहरणीयः । पश्य—

तथापि = स्वामिसेवायाः कर्तव्यत्वेऽपि, व्यापारेण = कार्येण, परिहरणीयः = त्याज्यः ।

करटक ने कहा—'फिर भी हमलोगों को इस कार्य (स्वामी का ध्यान रखना) से क्या लाभ ! क्योंकि अकरणीय कार्यों में व्यर्थ की उधेड़बुन करने से सदा बचना चाहिए । देखो—

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्तुमिच्छति ।
स भूमौ निहतः शेते कीलोत्पाटीव वानरः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यो नरः अव्यापारेषु व्यापारं कर्तुम् इच्छति, स (नरः) कीलोत्पाटी वानरः इव निहतः (सन्) शेते ॥ ३० ॥

अव्यापारेषु=अकार्येषु, स शेते=मृतः सन् भूमौ तिष्ठति । कीलोत्पाटी=कीलस्य=शङ्कोः, उत्पाटी=उत्पाटनकर्ता ॥

जो मनुष्य अकरणीय कार्यों के करने में अपने आपको लगाने की इच्छा करता है वह कील उखाड़ने वाले वानर के समान घायल होकर मर जाता है ॥

दमनकः पृच्छति—'कथमेतत्' करटकः कथयति—

दमनक ने पूछा—यह कैसे ? करटक ने कहा—

कथा १

अस्ति मगधदेशे धर्मारण्यसंनिहितवसुधायां शुभदत्तनाम्ना कायस्थेन विहारः कर्तुमारब्धः। तत्र करपत्रदार्यमाणैकस्तम्भस्य कियद्दूरस्फाटितस्य काष्ठखण्डद्वयमध्ये कीलकः सूत्रधारेण निहितः। तत्र बलवान् वानरयूथः क्रीडन्नागतः। एको वानरः कालप्रेरित इव तं कीलकं हस्ताभ्यां धृत्वोपविष्टः। तत्र तस्य मुष्कद्वयं लम्बमानं काष्ठखण्डद्वयाभ्यन्तरे प्रविष्टम्। अनन्तरं स च सहजचपलतया महता प्रयत्नेन तं कीलकमाकृष्टवान्। आकृष्टे च कीलके चूर्णिताण्डद्वयः पञ्चत्वं गतः। अतोऽहं ब्रवीमि 'अव्यापारेषु व्यापारम्' इत्यादि। दमनको ब्रूते—'तथापि स्वामिचेष्टानिरूपणं सेवकेनावश्यं करणीयम्।' करटको ब्रूते—सर्वस्मिन्नधिकारे य एव नियुक्तः प्रधानमन्त्री स करोतु। यतोऽनुजीविना पराधिकारचर्चा सर्वथा न कर्तव्या। पश्य—

मगधदेशे—एतन्नामकजनपदे (पटना गया आदि के प्रान्त को 'मगध' कहते हैं), धर्मारण्यसन्निहितवसुधायाम्=धर्मारण्यस्य निकटस्थभूमौ, विहारः=बौद्धभिक्षुकाणां निवासार्थं भवनम्, करपत्रदार्यमाणैकस्तम्भस्य—करपत्रेण=काष्ठविदारकास्त्रविशेषेण ('करौत, आरा' इति भाषायाम्) विदार्यमाणस्य=द्विधा क्रियमाणस्य, एकस्य=अन्यतमस्य, स्तम्भस्य=काष्ठविशेषस्य, कियद्दूरस्फाटितस्य=स्वल्पं विदारितस्य, काष्ठखण्डद्वयमध्ये=द्वयोः काष्ठखण्डयोर्मध्यभागे, कीलकः=शङ्कुः, सूत्रधारेण=काष्ठविदारकेण वार्द्धकिना (बढ़ई), निहितः=स्थापितः। बलवान्=महान्, वानरयूथः=वानरसमूहः, कालप्रेरितः=मृत्युप्रेरितः, तस्य=वानरस्य, मुष्कद्वयम्=द्वौ अण्डकोषौ, काष्ठखण्डद्वयाऽभ्यन्तरे=

विदार्यमाणकाष्ठशकलयोर्मध्यभागे । अनन्तरम्=काष्ठखण्डद्वयमध्येऽण्डकोषद्वय-प्रवेशान्ते, सहजचपलतया=स्वाभाविकचञ्चलतया, आकृष्टवान्=उत्पाटितवान् (खींचा, उखाड़ा) । चूर्णिताण्डद्वय — चूर्णितं=चूर्णीभूतम्, अण्डयोः=मुष्कयोः, द्वयम्=युगलं यस्य सः । पञ्चत्वं गतः=मृतः । तथापि=अव्यापारेषु व्यापारकरणस्यानौचित्येऽपि, स्वामिचेष्टानिरूपणम्=प्रभोश्चेष्टाया निर्णयः; अनुजीविना=सेवकेन, पराधिकारचर्चा=-अन्याधिकारसम्बद्धः वार्तालापः; सर्वथा=सर्वप्रकारेण ।।

मगध देश में धर्मारण्य के समीप ही किसी स्थान पर शुभदत्त नाम का एक कायस्थ बिहार (बौद्धमठ) बनवा रहा था । वहाँ आरे से चीरे गये कुछ दूर तक फटे हुए लकड़ी के एक खम्भे की दोनों फाँकों के बीच में बढ़ई ने एक कील गाड़ दी थी । एक दिन वहाँ बन्दरों का एक बहुत बड़ा झुण्ड खेलता कूदता हुआ पहुँचा । काल से प्रेरित होकर उनमें से एक बन्दर उस कील को पकड़ कर बैठ गया । वहाँ उसके लटकते हुए अंडकोश भी फटे हुए काठ के बीच में चले गये । इसके बाद उसने अपनी स्वाभाविक चंचलता के कारण बड़े परिश्रम से उस कील को खींच लिया । कील के निकल जाने पर उसके दोनों अण्डकोश उसी में पिस उठे, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी । इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि 'अव्यापार में जो व्यापार करता है' इत्यादि । दमनक ने कहा—'फिर भी सेवक को स्वामी की चेष्टाओं पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए ।' करकट ने कहा——'जिसे सभी अधिकार दिये हैं, वह प्रधान मन्त्री करे । क्योंकि सेवक को दूसरे के अधिकार की चर्चा भी कभी नहीं करनी चाहिए देखो——

पराधिकारचर्चां यः कुर्यात्स्वामिहितेच्छया ।
स विषीदति चीत्काराद् गर्दभस्ताडितो यथा ।। ३१ ।।

अन्वयः—यः (सेवकः) स्वामिहितेच्छया पराधिकारचर्चाम् कुर्यात् चीत्कारात् ताडितः गर्दभः यथा सः विषीदति ।। ३१ ।।

पराधिकारचर्चाम्=अन्याधिकारसम्बद्धां वार्ताम्, कुर्यात्=करोति, स्वामिहितेच्छया=प्रभोः हिताभिलाषेण, विषीदति=विषादं करोति, चीत्कारात्=चीत्कारकरणात् (चिल्लाने पे), गर्दभः=रासभः, यथा=इव ।।

जो सेवक स्वामी की भलाई के लिए दूसरे व्यक्ति के अधिकार की चर्चा करता है, वह उसी प्रकार दुःखी होता है जैसे चिल्लाने के कारण पिटा हुआ गदहा हुआ था ।। ३१ ।।

दमनकः पृच्छति--'कथमेतत्' ? करटको ब्रूते—

दमनक ने पूछा--'यह कैसे ?' करटक ने कहा——

कथा २

अस्ति वाराणस्यां कर्पूरपटको नाम रजकः। स रात्रौ गाढनिद्रायां प्रसुप्तः। तदनन्तरं तद्गृहद्रव्याणि हर्तुं चौरः प्रविष्टः। तस्य प्राङ्गणे गर्दभो बद्धस्तिष्ठति। कुक्कुरश्चोपविष्टोऽस्ति। अथ गर्दभः श्वानमाह—'सखे, भवतस्तावदयं व्यापारः। तत्किमिति त्वमुच्चैः शब्दं कृत्वा स्वामिनं न जागरयसि।' कुक्कुरो ब्रूते--'भद्र, मम नियोगस्य चर्चा त्वया न कर्तव्या। त्वमेव किं न जानासि यथा तस्याहर्निशं गृहरक्षां करोमि। यतोऽयं चिरान्निर्वृतो ममोपयोगं न जानाति। तेनाधुनापि ममाहारदाने मन्दादरः। यतो विना विधुरदर्शनं स्वामिन उपजीविषु मन्दादरा भवन्ति। गर्दभो ब्रूते--'शृणु रे बर्बर,

वाराणस्याम्=काश्याम्, रजकः=धावकः (धोबी), प्रसुप्तः=सुप्तवान्। तदनन्तरम्=रजकस्य शयनानन्तरम्, हर्तुम्=चोरयितुम्। किमिति=कथम्, नियोगस्य=कर्तव्यस्य, अहर्निशम्=अहोरात्रम्, निर्वृतः=चौरादिभयरहितः; निश्चिन्त इत्यर्थः, अधुना=इदानीम् 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा।' इत्यमरः। आहारदाने=भोजनदाने, मन्दादरः=शिथिलादरः, विना विधुरदर्शनम्=दुःखमनवलोक्य, उपजीविषु=भृत्येषु; बर्बर=दुष्ट, नीचेत्यर्थः॥

वाराणसी में कर्पूरपटक नाम का एक धोबी था। वह रात में गहरी नींद में सो गया। इसके पश्चात् उसके घर का सामान चुराने के लिए वहाँ चोर घुस आये। उसके आँगन में गदहा बँधा हुआ था और कुत्ता बैठा हुआ था। गदहे ने कुत्ते से कहा--'मित्र, यह तुम्हारा काम है। इसलिए जोर से शब्द करके स्वामी को क्यों नहीं जगा रहे हो?' कुत्ते ने कहा—'भाई, मेरे अधिकार की चर्चा तुम्हें नहीं करनी चाहिए। क्या तुम नहीं जानते हो कि मैं रात-दिन उनके घर की रखवाली करता रहता हूँ। इसी से वह इससे छुटकारा पाकर मेरी आवश्यकता नहीं समझता। और अब मुझे भोजन देने में भी लापरवाह हो गया है। क्योंकि बिना नुकसान देखे स्वामी लोग सेवकों की ओर ध्यान नहीं देते।' गदहे ने कहा—'अरे जंगली, सुन तो सही—

याचते कार्यकाले यः स किंभृत्यः स किंसुहृत्।'

कुक्कुरो ब्रूते—

'भृत्यान्संभाषयेद्यस्तु कार्यकाले स किंप्रभुः॥ ३२॥

अन्वयः—यः (भृत्यः सुहृद्वा) कार्यकाले याचते सः किंभृत्यः (च) किं-सुहृद् अस्ति। यः (प्रभुः) तु कार्यकाले भृत्यान् सम्भाषयेत्, सः किंप्रभुः अस्ति ॥ ३२ ॥

कार्यकाले = कार्यस्य समये, याचते = अर्थयते, किंभृत्यः = निन्दितः भृत्यः, किंसुहृद् = कुत्सितं मित्रम्, सम्भाषयेत् = भाषणं कुर्यात्, सर्वत्र 'किं क्षेपे' इति समासः ॥

'जो सेवक या मित्र कार्य के समय स्वामी या मित्र से कुछ माँगता है वह अच्छा मित्र या सेवक नहीं है।'

कुत्ते ने कहा—

'और काम पड़ने पर ही जो सेवक से बात करे, वह स्वामी भी तो अच्छा नहीं कहा जा सकता' ॥ ३२ ॥

यतः—आश्रितानां भृतौ स्वामिसेवायां धर्मसेवने।
पुत्रस्योत्पादने चैव न सन्ति प्रतिहस्तकाः ॥

अन्वयः—आश्रितानाम् भृतौ स्वामिसेवायाम् धर्मसेवने च पुत्रस्योत्पादने एव प्रतिहस्तकाः न सन्ति ॥ ३३ ॥

आश्रितानाम् = आश्रयवताम्, भृतौ = पालने, स्वामिसेवायाम् = स्वामि-सेवने, प्रतिहस्तकाः = प्रतिनिधयः। एतानि कार्याणि स्वयमेव कर्तव्यानि, न तु प्रतिनिधिद्वारेणेत्यर्थः।

क्योंकि—अपने अधीन लोगों की रक्षा करने, स्वामी की सेवा करने, धर्म का कार्य करने एवं सन्तान उत्पन्न करने में कोई किसी का प्रतिनिधि नहीं बन सकता है। अर्थात् ये कार्य अपने ही द्वारा सम्पन्न होते हैं ॥ ३३ ॥

ततो गर्दभः सकोपमाह—'अरे दुष्टमते, पापीयाँस्त्वं यद्विपत्तौ स्वामिकार्ये उपेक्षां करोषि।' भवतु तावत्। यथा स्वामी जागरिष्यति, तन्मया कर्तव्यम्। यतः—

सकोपम्—कोपेन सहितं यथा स्यात्तथा = क्रोधसहितम्, क्रियाविशेषण-मिदम्, आह = ब्रवीति 'ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः, इति ब्रुव्धातोराहा-देशस्तिपः णलादेशश्च। पापीयान्—अतिशयेन पापः पापीयान् पापशब्दादीय-सुन् प्रत्ययः—महापापीत्यर्थः, उपेक्षाम् = अवज्ञाम्। यथा = येन प्रकारेण, जाग रिष्यति = जागरणं करिष्यति, तत् = तथा कार्यम्, कर्तव्यम् = करणीयम् ॥

तब गदहे ने क्रोध के साथ कहा--'अरे दुष्ट, तू तो बहुत ही पापी है। स्वामी के कार्य में ध्यान नहीं देता है।' अच्छा, जो हो। मैं वही उपाय करूँगा जिससे स्वामी जाग जायें। क्योंकि--

पृष्ठतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया॥

अन्वयः--(जनः) अर्कम् पृष्ठतः, हुताशनम् जठरेण, स्वामिनं सर्वभावेन (तथा) परलोकम् अमायया सेवयेत्॥ ३४॥

अर्कम्=सूर्यम्, पृष्ठतः=पृष्ठभागेन, हुताशनम्--हुतमश्नातीति हुताशनस्तम्=अग्निम्, जठरेण=आभिमुख्येन, सर्वभावेन=सर्वप्रकारेण, परलोकम्=स्वर्गम्, अमायया=निष्कपटतया, सेवयेत्=इत्यस्य सर्वत्रान्वयः॥

सूर्य का सेवन पीठ देकर करना चाहिए, (सूर्य की ओर पीठ कर धूप लेनी चाहिए), अग्नि का सेवन पेट द्वारा करना चाहिए (आग सामने करके तापना चाहिए), स्वामी की सेवा सभी प्रकार से करनी चाहिए और परलोक का सेवन माया छोड़ कर करना चाहिए॥ ३४॥

इत्युक्त्वातीव चीत्कारशब्दं कृतवान्। ततः स रजकस्तेन चीत्कारेण प्रबुद्धो निद्राभङ्गकोपादुत्थाय गर्दभं लगुडेन ताडयामास। तेनासौ पञ्चत्वमगमत्। अतोऽहं ब्रवीमि--'पराधिकारचर्चाम्' इत्यादि। पश्य। पशूनामन्वेषणमेवास्मन्नियोगः। स्वनियोगचर्चा क्रियताम्। (विमृश्य)। 'किन्त्वद्य तया चर्चया न प्रयोजनम्। यत आवयोर्भक्षितशेषाहारः प्रचुरोऽस्ति।' दमनकः सरोषमाह--'कथमाहारार्थी भवान् केवलं राजानं सेवते। एतदयुक्तमुक्तं त्वया। यतः--

अतीव=उच्चस्वरेण, पुनःपुनर्वा, चीत्कारशब्दं कृतवान्=चीत्कृतवान्। प्रबुद्धः=जागरितः, निद्राभङ्गकोपात्--निद्राया भङ्गेन यः कोपस्तस्मात्=जागरणजन्यक्रोधात्, लगुडेन=वंशदण्डेन ('लाठी'), तेन लगुडताडनेन, असौ=गर्दभः, पञ्चत्वमगमत्=मृतः। अन्वेषणम्=अनुसन्धानम्, अस्मन्नियोगः=अस्माकमधिकृतं कार्यम् (ड्यूटी)। आवयोः=मम तव च, भक्षितशेषाहारः=भुक्तावशिष्टं भोज्यम्, प्रचुरः=पर्याप्तः (काफी), आहारार्थी=भोजनाभिलाषुकः। अयुक्तम्=अनुचितम्॥

ऐसा कहकर वह अत्यन्त जोर से शब्द करना प्रारंभ किया जिससे वह धोबी उस रेकने से जाग पड़ा और नींद टूट जाने के कारण क्रोध से उठकर गदहे को डंडे से पीटने लगा, जिससे वह मर गया। इसी लिए मैं कह रहा हूँ कि दूसरे व्यक्ति के अधिकार की चर्चा, आदि। पशुओं की टोह लगाना ही हम लोगों का काम है। अपने काम की बात करो। (विचार करके) किन्तु आज हमें उसकी चर्चा की भी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हम लोगों के खाने से बचा हुआ भोजन अभी पर्याप्त है।' दमनक ने क्रोध के साथ कहा—'क्या तुम केवल भोजन पाने के लिए ही राजा की सेवा करते हो। यह तो तुमने अनुचित कहा है। क्योंकि—

सुहृदामुपकारकारणाद्
द्विषतामप्यपकारकारणात्।
नृपसंश्रय इष्यते बुधै-
र्जठरं को न बिभर्ति केवलम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—सुहृदाम् उपकारकारणात्, द्विषताम्=शत्रूणाम् अपि अपकारकारणात् बुधैः नृपसंश्रयः इष्यते, कः (जनः) केवलम् जठरम् न बिभर्ति ॥ ३५ ॥

सुहृदाम्=मित्राणाम्, उपकारकारणात्=उपकाराय, द्विषताम्=शत्रूणाम्, अपकारकारणात्=अपकाराय हानये इत्यर्थः, बुधैः=विद्वद्भिः, नृपसंश्रयः=राजाश्रयणम्, राजसेवेत्यर्थः, इष्यते=अभिलष्यते। जठरम्=उदरम् बिभर्ति=पूरयति ॥

बुद्धिमान् लोग मित्रों का उपकार एवं शत्रुओं का विनाश करने के लिए ही राजा की सेवा करते हैं। वैसे अपना पेट कौन नहीं भर लेता ॥ ३५ ॥

जीविते यस्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि बान्धवाः।
सफलं जीवितं तस्य आत्मार्थे को न जीवति ॥ ३६ ॥

अन्वयः—यस्य जीविते विप्राः मित्राणि, बान्धवाः (च) जीवन्ति, तस्य जीवितम् सफलम् (अस्ति), आत्मार्थे कः (नरः) न जीवति ॥ ३६ ॥

यस्य=मनुष्यस्य, जीविते=जीवने, यस्मिन् जीवति सति इत्याशयः, विप्राः=ब्राह्मणाः, बान्धवाः=भ्रात्रादिपरिवाराः, सफलम्=सार्थकम्, आत्मार्थे=स्वार्थे ॥

जिसके जीवित रहने से ब्राह्मण, मित्र और भाई बन्धु जीवित रहें, उसी का जीवन सफल है। यों अपने लिए तो सभी जीवित रहते हैं ॥ ३६ ॥

अपि च—यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः स तु जीवतु।
काकोऽपि किं न कुरुते चञ्च्वा स्वोदरपूरणम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः--यस्मिन् (जने) जीवति (सति) बहवः (जनाः) जीवन्ति, सः तु जीवतु । काकः अपि चञ्च्वा स्वोदरपूरणम् न कुरुते किम् ? ।। ३७ ।।

बहवः=अनेके जनाः, काकः=वायसः, चञ्च्वा=त्रोटया 'चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रियौ' इत्यमरः । स्वोदरपूरणम्=स्वजठरपूर्तिम् ।।

और भी--जिसके जीवित रहने पर, बहुत-से लोग जीवित रहते हैं; सचमुच वही जीवित रहता है । नहीं तो कौवा भी क्या अपनी चोंच से अपना पेट नहीं भर लेता है ? ।। ३७ ।।

पश्य--पञ्चभिर्याति दासत्वं पुराणैः कोऽपि मानवः ।
कोऽपि लक्षैः कृती कोऽपि लक्षैरपि न लभ्यते ।। ३८ ।।

अन्वयः--कः अपि मानवः पञ्चभिः पुराणैः दासत्वम् याति, कः अपि लक्षैः कृती (भवति), कः अपि लक्षैः न लभ्यते ।। ३८ ।।

कोऽपि=कश्चित्, पुराणैः=पणैः (अशीतिवराटिकानामेकः पणो भवति—पैसा), दासत्वं याति=भृत्यो भवति, लक्षैः=शतसहस्रपणैर्मुद्राभिर्वा, कृती=कृतार्थः ।।

देखो--कोई मनुष्य पाँच पैसे पर ही गुलाम बन जाता है, कोई लाखों पैसे पर, किन्तु कोई-कोई लाखों पर भी नहीं प्राप्त होता अर्थात् गुलामी नहीं स्वीकार करता ।। ३८ ।।

अन्यच्च—मनुष्यजातौ तुल्यायां भृत्यत्वमतिगर्हितम् ।
प्रथमो यो न तत्रापि स किं जीवत्सु गण्यते ।। ३९ ।।

अन्वयः—मनुष्यजातौ तुल्यायाम् भृत्यत्वम् अतिगर्हितम् (अस्ति), तत्र अपि यः (भृत्यः) प्रथमः न (भवति), सः जीवत्सु गण्यते किम् ? ।।३९।।

मनुष्यजातौ=मनुष्यत्वे, भृत्यत्वम्=दासत्वम्, अतिगर्हितम्=अतिशयेन निन्दितम्; तत्रापि तस्मिन् भृत्यत्वेऽपि, यः=भृत्यः, प्रथमः=मुख्यः, भृत्येषु प्रधानम् इत्यर्थः, जीवत्सु=प्राणान् धारयत्सु ।।

और भी—मनुष्य जाति में अपने समान व्यक्ति की नौकरी करना अत्यन्त निन्दनीय है । ऐसी दशा में सेवक होकर भी सेवा में सर्वप्रथम नहीं हुआ, क्या उसकी गणना जीवितों में की जा सकती है ? ।। ३९ ।।

तथा चोक्तम्--वाजिवारणलोहानां काष्ठपाषाणवाससाम् ।
नारीपुरुषतोयानामन्तरं महदन्तरम् ।। ४० ।।

अन्वयः—वाजिवारणलोहानाम् काष्ठपाषाणवाससाम् नारीपुरुषतोयानाम् (पारस्परिकम्) अन्तरम् महत् अन्तरम् (भवति) ॥ ४० ॥

वाजिवारणलोहानाम् = अश्वगजायसानाम्, काष्ठपाषाणवाससाम = दारुशिलावस्त्राणाम्, नारीपुरुषतोयानाम् = स्त्रीपुरुषजलानाम्, अन्तरम् = भेदः। अश्वादिषु परस्परं महान् भेदो भवति, नैव सर्वेऽपि समानरूपा भवन्तीत्याशयः॥

जैसे कहा भी गया है—घोड़ा, हाथी, लोहा, लकड़ी, पत्थर, कपड़ा, नारी-पुरुष और जल में महान अन्तर होता है ॥ ४० ॥

तथा हि। स्वल्पमप्यतिरिच्यते—

स्वल्पमपि = पूर्वोक्ताश्वादीनां साधारणमप्यन्तरम्, अतिरिच्यते = अधिक-महत्त्वाधायकं भवति ॥

फिर भी कभी-कभी छोटी वस्तु भी बड़ी मानी जाती है।

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न भवेत्तस्य क्षुधः शान्तये।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥४१॥

अन्वयः—श्वा स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनम् निर्मांसम् अपि अस्थिकम् लब्ध्वा परितोषम् एति, (किन्तु तत्) तस्य क्षुधः शान्तये न भवेत्। सिंहः अङ्कम् आगतम् अपि जम्बुकम् त्यक्त्वा द्विपम् निहन्ति, कृच्छ्रगतः अपि सर्वः जनः सत्त्वानुरूपम् फलम् वाञ्छति ॥ ४१ ॥

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनम्—स्वल्पेन = मात्रायां न्यूनेन, स्नायुवसयोः = वस्नसामेदसोः, अवशेषेण = अवशिष्टांशेन, मलिनम् = मलयुक्तम्, निर्मांसम् = मांसरहितम्, अस्थिकम् = अस्थि (हड्डी), लब्ध्वा = प्राप्य, परितोषम् = सन्तोषम्; एति = प्राप्नोति। क्षुधः = बुभुक्षायाः, शान्तये = शमनाय। जम्बुकम् = शृगालम्, अङ्कम् = स्वक्रोडम्, अतिसमीपमित्यर्थः, आगतम् = स्वयं प्राप्तम्, निहन्ति = मारयति, द्विपम् = गजम्, कृच्छ्रगतः = कष्टावस्थां प्राप्तः, सत्त्वानुरूपम् = स्वबलानुकूलम् ॥

थोड़ी-सी नसों और चर्बी से मैली मांस-रहित हड्डी को ही पाकर कुत्ता संतुष्ट हो जाता है, यद्यपि उससे उसकी भूख शान्त नहीं होती है। किन्तु सिंह गोद में आये हुए गीदड़ को छोड़ कर हाथी को मारता है; क्योंकि सभी लोग कठिनाई में पड़ जाने पर भी अपने पराक्रम के अनुकूल ही फल की इच्छा करते हैं ॥ ४१ ॥

अपरञ्च, सेव्यसेवकयोरन्तरं पश्य--

सेव्यसेवकयोः=स्वामिदासयोः, अन्तरम्=परस्परभेदम् ॥

और भी, स्वामी सेवक का अन्तर देखो--

लांगूलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुंक्ते ॥ ४२ ॥

अन्वयः—श्वा पिण्डदस्य (पुरोभागे) लाङ्गूलचालनम् अधश्चरणावपातम्, च भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनम् कुरुते, तु गजपुङ्गवः धीरम् विलोकयति; च चाटुशतैः भुङ्क्ते ॥ ४२ ॥

पिण्डदस्य—पिण्डं ददातीति पिण्डदस्तस्य=ग्रासदस्य, भोजनदातुः स्वामिन इति यावत्, लाङ्गूलचालनम्=पुच्छभ्रामणम्, अधश्चरणावपातम्=चरणयोरधः पतनम्, निपत्य=लुठित्वा, वदनोदरदर्शनम्=स्वमुखस्य स्वजठरस्य च प्रदर्शनम् । गजपुङ्गवः=गजराजः, धीरम्=मन्दम्, विलोकयति=पश्यति, चाटुशतैः=नानाचाटुकारैः प्रियभाषणैः । अनेन शुनो गजस्य च स्वभावप्रदर्शनेन नीचस्य उच्चस्य च महदन्तरमिति सूचितम् ॥

कुत्ता टुकड़ा देने वाले स्वामी के आगे अपनी पूँछ हिलाता है, उसके पैरों पर लोटता है, पृथ्वी पर लोट कर उसे अपना पेट तथा मुँह दिखाता है, किन्तु गजराज अपने स्वामी को बड़ी गम्भीरता से देखता है और सैकड़ों खुशामद के बाद उसके दिये हुए भोजन को ग्रहण करता है ॥ ४२ ॥

किञ्च--यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै-
र्विज्ञानविक्रमयशोभिरभज्यमानम् ।
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते ॥ ४३ ॥

अन्वयः--मनुष्यैः विज्ञानविक्रमयशोभिः अभज्यमानम् प्रथितम् यत् क्षणम् अपि जीव्यते, तज्ज्ञाः इह तत् जीवितं प्रवदन्ति नाम, (अन्यथा) काकः अपि चिराय जीवति, बलिं च भुङ्क्ते ॥ ४३ ॥

जीव्यते=जीवनं धार्यते, क्षणमपि=क्षणमात्रमपि अत्यल्पकालमपीति यावत् । विज्ञानविक्रमयशोभिः--विज्ञानं च=कलानैपुण्यञ्च, विक्रमश्च=पराक्रमश्च यशश्च कीर्तिश्च इति विज्ञानविक्रमयशांसि तैः, अभज्यमानम्=

पूर्णम्, अत एव प्रथितम्=प्रसिद्धं यथा स्यात्तथा जीव्यत इत्यनेन सम्बन्धः, तज्ज्ञाः— तत् जानन्ति इति तज्ज्ञाः=तद्विदः, इह=संसारे, प्रवदन्ति=कथयन्ति, बलिम्=बलिदाने दीयमानं भोज्यम्, धर्मशास्त्रेषु श्वाकाकादिभ्यो बलिप्रदानस्य विधिरुक्तः। कलाकौशलपराक्रमकीर्तिभिः पूर्णतया प्रसिद्धं जीवनमेव मानवानां वास्तविकं जीवनमस्ति, अन्यथा काकतुल्यं मानवजीवनं व्यर्थमिति भावः।

और भी—ज्ञान, विक्रम एवं कीर्ति से युक्त तथा लोगों में प्रसिद्ध होकर जो व्यक्ति एक क्षण भी जीवित रहता है, विद्वान् लोग उसी को जीवित कहते हैं। यों तो कौवा भी बहुत दिनों तक जीवित रहकर बलि का अन्न खाया करता है॥

अपरञ्च—यो नात्मजे न च गुरौ न च भृत्यवर्गे
दीने दयां न कुरुते न च बन्धुवर्गे।
किं तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुक्ते॥ ४४॥

अन्वयः—यः (नरः) आत्मजे दयां न (कुरुते, कुरुते इत्यस्य अग्रेऽपि सम्बन्धः), च गुरौ न, च भृत्यवर्गे न, दीने न, च बन्धुवर्गे न; मनुष्यलोके तस्य जीवितफलेन किम् (अस्ति)? काकः अपि चिराय जीवति, च बलिं भुङ्क्ते॥४४॥

आत्मजे=पुत्रे, गुरौ=मातापित्रादिगुरुजने, भृत्यवर्गे=सेवकसमूहे, दीने दुःखिते; बन्धुवर्गे=बान्धवसमूहे; तस्य=पूर्वोक्तपुत्रादिषु दयारहितस्य नरस्य, जीवितफलेन=जीवनेन।

और भी—जो व्यक्ति पुत्र, गुरु, सेवकों एवं बन्धु-बान्धवों के प्रति दया नहीं करता, इस मनुष्य लोक में उसके जीवित रहने से क्या लाभ? यों कौवा भी तो बलि का अन्न खा-खाकर बहुत दिनों तक जीवित रहता है॥ ४४॥

अपरमपि—अहितहितविचारशून्यबुद्धेः
श्रुतिसमयैर्बहुभिस्तिरस्कृतस्य।
उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः
पुरुषपशोश्च पशोश्च को विशेषः॥ ४५॥

अन्वयः—अहितहितविचारशून्यबुद्धेः बहुभिः तिरस्कृतस्य च उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः पुरुषपशोः च पशोः को विशेषः (अस्ति)?॥ ४५॥

अहितहितविचारशून्यबुद्धेः—अहितहितयोः=अशुभकरशुभकरयोः, विचारेण =ज्ञानेन शून्या=हीना, बुद्धिः=मतिर्यस्य स तस्य, हिताहितज्ञानहीनस्येति यावत्, बहुभिः=अनेकैः, श्रुतिसमयैः=शास्त्रसिद्धान्तैः 'समयाः शपथाचार-कालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः; तिरस्कृतस्य=हीनस्य शास्त्रोक्तं कर्माकुर्वतः, उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः=जठरपूर्तिमात्राभिलाषुकस्य, पुरुषपशोः=पुरुषेषु पशुतुल्यस्य, पशोः=गवादिपशोः च को विशेषः=किमन्तरमस्ति, किमप्यन्तरं नास्तीति भावः ॥

और भी—अपने भले-बुरे का विचार न कर सकने वाले, वेदोक्त अनेकों आचारों से शून्य तथा केवल अपना ही पेट भरने की इच्छा रखने वाले मनुष्य रूपी पशु तथा पशु में अन्तर ही क्या है ? ॥ ४५ ॥

करटको ब्रूते—'आवां तावदप्रधानौ। तदाप्यावयोः किमनया विचारणया' दमनको ब्रूते—'कियता कालेनामात्याः प्रधानताम-प्रधानतां वा लभन्ते। यतः—

अप्रधानौ=अमुख्यौ, कियता=कियत्परिमाणेन, अमात्याः=मन्त्रिणः, प्रधानताम्=मुख्यताम् ॥

करटक ने कहा—'हम लोग तो प्रधान नहीं है। अतः हमें ऐसे विचारों से क्या लाभ होगा।' दमनक ने कहा—'बहुत दिनों के प्रयत्न के बाद ही साधारण मंत्री प्रधान अथवा अप्रधान पद प्राप्त करते हैं। क्योंकि—

न कस्यचित्कश्चिदिह स्वभावा-
द्भवत्युदारोऽभिमतः खलो वा।
लोके गुरुत्वं विपरीततां वा
स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति ॥ ४६ ॥

अन्वयः—इह कश्चित् (नरः) स्वभावात् कस्यचित् उदारः अभिमतः वा खलः न भवति, (किन्तु) लोके स्वचेष्टितान्येव नरं गुरुत्वम् वा विपरी-तताम् नयन्ति ॥ ४६ ॥

स्वभावात्=प्रकृतेः, उदारः=दाता महान् वा, 'उदारो दातृमहतोः' इत्य-मरः। अभिमतः=अभीष्टः, खलः=दुर्जनः। गुरुत्वम्=गौरवम्, विपरीत-ताम्=अगौरवम्, स्वचेष्टितानि=आत्मनः कार्याणि, नयन्ति=प्राप्नुवन्ति ॥

कोई व्यक्ति अपने स्वभाव से ही संसार में किसी के प्रति उदार, प्रिय एवं दुष्टस्वभाववाला नहीं होता है, बल्कि उसके कार्य ही उसे महत्ता अथवा नीचता की ओर ले जानेवाले होते हैं ॥ ४६ ॥

किं च—आरोप्यते शिला शैले यत्नेन महता यथा ।
निपात्यते क्षणेनाधस्तथात्मा गुणदोषयोः ॥ ४७ ॥

अन्वयः—यथा शिला महता यत्नेन शैले आरोप्यते, (च) क्षणेन अधः निपात्यते; तथा आत्मा गुणदोषयोः महता यत्नेन आरोप्यते, क्षणेन निपात्यते च ।

आरोप्यते=आरोह्यते, आत्मा=जीवात्मा, महतोद्योगेन शैलोपरि स्थाप्यमाना शिलेव जीवात्मा महाप्रयत्नेन गुणे आरोपितो भवति, तथा उपरितनभागात् क्षणमात्रेणाधःपात्या शिलेव जीवात्मा क्षणमात्रेण दोषयुक्तो विधीयते ।

और भी—जैसे पत्थर की चट्टान पहाड़ पर बड़े यत्न के साथ चढ़ाई जाती है किन्तु वही नीचे की ओर बड़ी आसानी से गिरा दी जाती है, उसी प्रकार आत्मा बड़े प्रयत्न से गुणों पर पहुँचाई जाती है और आसानी से दोषों में नीचे गिरा दी जाती है ॥ ४७ ॥

यात्यधोऽधः व्रजत्युच्चैर्नरः स्वैरेव कर्मभिः ।
कूपस्य खनिता यद्वत्प्राकारस्येव कारकः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—नरः स्वैः एव कर्मभिः कूपस्य खनिता यद्वत् प्राकारस्य कारकः इव (क्रमशः) अधो याति उच्चैः व्रजति ॥ ४८ ॥

स्वैरेव कर्मभिः=आत्मकृत्यैरेव, खनिता=खनकः, यद्वत्=इव, प्राकारस्य=दुर्गादिचतुर्दिकस्थभित्तेः, कारकः=कर्ता ॥

मनुष्य अपने कर्मों द्वारा ही कुआँ खोदने वाले के समान तो नीचे जाता है और चहारदीवारी बनाने वाले के समान ऊपर पहुँचता है ॥ ४८ ॥

तद्भद्रम् । स्वयत्नायत्तो ह्यात्मा सर्वस्य ।' करटको ब्रूते—'अथ भवान् किं ब्रवीति ? ।' स आह—'अयं तावत्स्वामी पिङ्गलकः कुतोऽपि कारणात्सचकितः परिवृत्योपविष्टः ।' 'करटको ब्रूते—किं तत्त्वं जानासि ।' दमनको ब्रूते—'किमत्राविदितमस्ति । उक्तं च—

भद्रम्=वरम् । स्वयत्नायत्तः=स्वकर्माधीनः, कुतोऽपि=कस्माच्चिदपि, सचकितः=भययुक्तः, तत्त्वम्=वास्तविकताम् ॥

अतः हे भाई, सभी की आत्मा अपने कर्मों के ही अधीन होती है । करटक ने कहा—'आप यह क्या कह रहे हैं ?' उसने कहा—'मेरे स्वामी पिंगलक किसी कारण से ही लौट कर अत्यन्त चकित भाव से बैठे हैं ।' करटक ने कहा—'तो क्या तुम इसका कुछ मतलब समझ रहे हो ।' दमनक ने कहा—इसमें कौन-सी बात छिपी ही है । कहा भी है—

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते
हयाश्च नागाश्च वहन्ति देशिताः ।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः
परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ॥ ४९ ॥

अन्वयः--उदीरितः अर्थः पशुनापि गृह्यते, देशिताः हयाः च नागाः च वहन्ति; पण्डितः जनः अनुक्तम् अपि ऊहति, हि बुद्धयः परेङ्गितज्ञानफलाः (भवन्ति) ॥

उदीरितः=कथितः, अर्थः=विषयः, पशुना=गोहयादिना चतुष्पदजन्तुना, नागाः=गजाः, देशिताः=प्रेरिताः, ऊहति=तर्कद्वारा जानाति, तर्कयति इति यावत्, परेङ्गितज्ञानफलाः=अन्यदीयमानसिकेच्छाबोधपरिणामाः ॥

पशु भी कही हुई बातों को समझ लेता है, आज्ञा पाये हुए घोड़े-हाथी भी सवारी ढोते हैं और पंडित व्यक्ति बिना कहे हुए ही किसी बात को समझ लेते हैं। क्योंकि दूसरों के मनोभावों को जान लेना ही बुद्धि का फल होता है।४९।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ ५० ॥

अन्वयः—आकारैः, इङ्गितैः, गत्या, चेष्टया, भाषणेन च नेत्रवक्त्रविकारेण अन्तर्गतम् मनः लक्ष्यते ॥ ५० ॥

आकारैः=आकृतिभिः, इङ्गितैः=हृद्गतभावैः, गत्या=गतिविधिना; चेष्टया=हस्तादिसंचालनादिचेष्टया, भाषणेन=कथनेन, नेत्रवक्त्रविकारेण=चक्षुर्मुखमुद्रया, लक्ष्यते=परिचीयते, अन्तर्गतं मनः=आन्तरिकभावः ॥

आकृति, संकेत, गति, चेष्टा, वाणी और मुख के परिवर्तन से अन्तःकरण की बात ज्ञात हो जाती है ॥ ५० ॥

अत्र भयप्रस्तावे प्रज्ञाबलेनाहमेनं स्वामिनमात्मीयं करिष्यामि । यतः—

भयप्रस्तावे=स्वामिनो भयावसरे, प्रज्ञाबलेन=बुद्धिबलेन, आत्मीयम्=स्ववशम् ॥

इस भय की उपस्थिति के समय मैं अपनी बुद्धि के बल से इस स्वामी को अपना बना लूँगा ।

प्रस्तावसदृशं वाक्यं सद्भावसदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः' ॥ ५१ ॥

अन्वयः——यः (नरः) प्रस्तावसदृशम् वाक्यम् सद्भावसदृशम् प्रियम्, आत्मशक्तिसमम्, कोपम् जानाति, सः पण्डितः (अस्ति) ॥ ५१ ॥

प्रस्तावसदृशम्=अवसरानुकूलम्, वाक्यम्=वाक्कथनम्, सद्भावसदृशम्=सद्भावनोचितम्, प्रियम्=प्रियभाषणम्, आत्मशक्तिसमम्=स्वसामर्थ्यानुकूलम् ।

प्रसंग के अनुसार बातचीत, सद्भाव के अनुकूल प्रेम तथा अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध करना जो व्यक्ति जानता है वही पंडित कहा जाता है ॥ ५१ ॥

करटको ब्रूते—'सखे, त्वं सेवानभिज्ञः । पश्य—

सेवानभिज्ञः=सेवाकरणज्ञानहीनः ॥

करटक ने कहा—मित्र ! तुम सेवा करना नहीं जानते । देखो—

अनाहूतो विशेद्यस्तु अपृष्टो बहु भाषते ।
आत्मानं मन्यते प्रीतं भूपालस्य स दुर्मतिः' ॥ ५२ ॥

अन्वयः——यः तु अनाहूतः विशेत्, अपृष्टः बहु भाषते, आत्मानम् भूपालस्य प्रीतम् मन्यते; सः दुर्मतिः (अस्ति) ॥ ५२ ॥

अनाहूतः=अनाकारितः, विशेत्=गृहादौ गच्छेत्; अपृष्टः=अननुयुक्तः (बिना पूछा गया), प्रीतम्=प्रियम्, दुर्मतिः=दुर्बुद्धिः, बुद्धिहीन इति भावः ।

जो बिना बुलाये निकट जाता है, बिना पूछे बहुत-सी बातें करता है और अपने को राजा का प्रिय समझता है वह मूर्ख है ॥ ५२ ॥

दमनको ब्रूते—'भद्र, कथमहं सेवानभिज्ञः । पश्य ।

दमनक ने कहा—'भाई, मैं सेवा करना क्यों नहीं जानता ? देखो—

किमप्यस्ति स्वभावेन सुन्दरं वाप्यसुन्दरम् ।
यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम् ॥ ५३ ॥

अन्वयः——स्वभावेन सुन्दरम् असुन्दरम् वा अपि किमपि अस्ति ? यस्मै यत् एव (वस्तु) रोचते, तत् (वस्तु) तस्य सुन्दरम् अस्ति ॥ ५३ ॥

सुन्दरम्=मनोहरम्, रोचते=रुचिकरं जायते । स्व-स्वरूच्यनुसारमेव सर्वं वस्तु सर्वस्य जनस्य सदसद्वा ज्ञायते इति भावः ॥

कोई वस्तु स्वभाव से ही भली या बुरी नहीं होती बल्कि जिसमें जिसकी रुचि होती है, वही उसे भली लगती है ॥ ५३ ॥

यतः—यस्य यस्य हि यो भावस्तेन तेन हि तं नरम् ।
अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत् ॥ ५४ ॥

अन्वयः--हि यस्य यस्य (जनस्य) यः यः भावः (भवति), मेधावी (नरः) तेन तेन अनुप्रविश्य तम् नरम् क्षिप्रम् आत्मवशम् नयेत् ॥ ५४ ॥

भावः=मनोऽभिप्रायः; अनुप्रविश्य=तदनुकूलतया तं विश्वास्य, मेधावी=विद्वान्, आत्मवशं नयेत्=स्वस्य वशीभूतं कुर्यात् ॥

क्योंकि--प्रतिभाशाली मनुष्य को चाहिए कि जिसका जैसा भाव हो उसी के अनुसार उसके हृदय में घुस कर शीघ्र ही उसे अपने वश में कर ले ॥५४॥

अन्यच्च--कोऽत्रेत्यहमिति ब्रूयात्सम्यगादेशयेति च ।
आज्ञामवितथां कुर्याद्यथाशक्ति महीपतेः ॥ ५५ ॥

अन्वयः--(महीपतिना) अत्र कः (अस्ति) ? (इति पृष्टः) 'अहम् (अस्मि) सम्यक् आदेशय' इति ब्रूयात्; यथाशक्ति महीपतेः आज्ञाम् अवितथाम् (च) कुर्यात् ॥ ५५ ॥

सम्यगादेशय=यथावदाज्ञापय, अवितथाम्=सत्यां सफलामिति भावः, यथाशक्ति=शक्त्यनुसारम्, 'अव्ययं विभक्ति-' इति याथार्थ्येऽव्ययीभावः ॥

और भी--राजा ज्यों ही 'यहाँ कौन है' इस प्रकार कहे, उस समय 'मैं हूँ, आज्ञा दीजिए' इस प्रकार सेवक को कहना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार राजा की आज्ञा व्यर्थ नहीं होने देना चाहिए ॥ ५५ ॥

अपरं च--अल्पेच्छुर्धृतिमान्प्राज्ञश्छायेवानुगतः सदा ।
आदिष्टो न विकल्पेत स राजवसतौ वसेत्' ॥ ५६ ॥

अन्वयः--(यः सेवकः) अल्पेच्छुः धृतिमान् प्राज्ञः, छाया इव सदा अनुगतः (राज्ञा) आदिष्टः न विकल्पेत; सः राजवसतौ वसेत् ॥ ५६ ॥

अल्पेच्छुः=स्वल्पवेतनेच्छुः, धृतिमान्=धैर्ययुक्तः, प्राज्ञः=विद्वान्, अवसरज्ञ इत्यर्थः, छायेव=छायातुल्यं, सदा स्वाम्यनुगामी, आदिष्टः=आज्ञप्तः, न विकल्पेत=इदं कुर्यां न वा कुर्यामिति न विचारयेत्; राजवसतौ=राजभवने ॥

और भी--थोड़े वस्तु की इच्छा रखने वाला, धैर्यशाली, छाया के समान सदा स्वामी के पीछे-पीछे चलने वाला और उसके आदेश का बिना विचारे पालन करने वाला बुद्धिमान ही राजा के पास रह सकता है ॥ ५६ ॥

करटको ब्रूते-'कदाचित्त्वामनवसरप्रवेशादवमन्यते स्वामी'। स चाह--'अस्त्वेवम् । तथाप्यनुजीविना स्वामिसांनिध्यमवश्यं करणीयम् । यतः--

अनवसरप्रवेशात्=असमये गमनात्, अवमन्यते=अपमानं करोति। स्वामिसांनिध्यम्=स्वामिनः निकटे स्थितिम्॥

करटक ने कहा—'संभवतः स्वामी बिना काम के ही पास गये हुए तुम्हारा कहीं अपमान न करे।' उसने कहा—ऐसा हो सकता है। किन्तु सेवक को स्वामी के निकट अवश्य रहना चाहिए। क्योंकि—

दोषभीतेरनारम्भस्तत्कापुरुषलक्षणम्।
कैरजीर्णभयाद् भ्रातर्भोजनं परिहीयते॥ ५७॥

अन्वयः—(यत्) दोषभीतेः अनारम्भः (भवति), तत् कापुरुषलक्षणम् (अस्ति), हे भ्रातः! अजीर्णभयात् भोजनम् कैः परिहीयते?॥ ५७॥

दोषभीतेः=वातपित्तादिदोषजदुःखभयात्, अनारम्भः-कार्यस्य अप्रारम्भः; कापुरुषलक्षणम्=निन्द्यजनस्य चिह्नम्। अजीर्णभयात्=अजीर्णस्य भयहेतोः, भुक्तमन्नं जीर्णं भविष्यति नवेति भयकारणात्, परिहीयते=त्यज्यते॥

किसी दोष के डर से जो कार्य ही नहीं प्रारंभ करता वह तो कायर कहा जाता है। अरे भाई! भला अपच के डर से सामने रक्खे हुए भोजन को कोई छोड़ देता है?॥ ५७॥

पश्य—आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं
विद्याविहीनमकुलीनमसंगतं वा।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च
यः पार्श्वतो वसति तं परिवेष्टयन्ति'॥ ५८॥

अन्वयः—नृपतिः विद्याविहीनम् अकुलीनम् वा असङ्गतम् आसन्नम् एव मनुष्यम् भजते, प्रायेण भूमिपतयः प्रमदाः च लताः यः पार्श्वतः वसति, तम् परिवेष्टयन्ति॥ ५८॥

आसन्नम्=निकटस्थम्, अकुलीनम्=नीचवंशजम्, असङ्गतम्=अयोग्यम्, प्रायेण=प्रायशः, प्रमदाः=स्त्रियः, पार्श्वतः=पार्श्वभागे, निकटे इत्यर्थः, परिवेष्टयन्ति=भूमिपतयः अनुगृहीतं कुर्वन्ति, प्रमदाः आलिङ्गनं कुर्वन्ति, लताश्च आश्रयन्ति॥

देखो—राजा अपने पास रहने वाले मनुष्य को ही याद रखता है, भले ही वह मनुष्य विद्या से रहित, अकुलीन अथवा मूर्ख ही क्यों न हो। क्योंकि राजा, स्त्रियाँ और लताएँ प्रायः उसी को अपनाती हैं जो उनके पास रहता है॥५८॥

करटको ब्रूते—'अथ तत्र गत्वा किं वक्ष्यति भवान्।' स आह—'शृणु। किमनुरक्तो विरक्तो वा मयि स्वामीति ज्ञास्यामि।' करटको ब्रूते—'किं तज्ज्ञानलक्षणम्।' दमनको ब्रूते—'शृणु।

वक्ष्यति=कथयिष्यति। अनुरक्तः=स्नेहयुक्तः, विरक्तः=विरागयुक्तः ॥

करटक ने कहा—'तो वहाँ जाकर आप क्या कहेंगे ?' उसने कहा—'सुनो, पहले मैं यह मालूम करूँगा कि स्वामी मुझ पर प्रसन्न है अथवा मेरी उपेक्षा कर रहा है।' करटक ने कहा—'इसको जानने का क्या उपाय है' ? दमनक ने कहा—'सुनो—

दूरादवेक्षणं हासः संप्रश्नेष्वादरो भृशम्।
परोक्षेऽपि गुणश्लाघा स्मरणं प्रियवस्तुषु ॥ ५९ ॥

अन्वयः—दूरादवेक्षणम्, हासः, संप्रश्नेषु भृशम् आदरः, परोक्षे अपि गुणश्लाघा, प्रियवस्तुषु स्मरणम् ॥ ५९ ॥

अवेक्षणम्=अवलोकनम्, संप्रश्नम्=अत्यादरपूर्वकं प्रश्नश्रवणम्, परोक्षे=अप्रत्यक्षे, गुणश्लाघा=गुणप्रशंसा, स्मरणं=प्रियकरं वस्तु प्राप्य स्मृतिः, 'स यदीदानीं स्यात्तदा तस्मै अपि इदं ददामी'त्यादिभावेन स्मरणम् ॥

दूर से ही देखना, हँसना, पूछते समय बहुत आदर दिखाना, पीठ पीछे गुणों की प्रशंसा करना, और प्रिय वस्तुओं में याद करना ॥ ५९ ॥

असेवके चानुरक्तिर्दानं सप्रियभाषणम्।
अनुरक्तस्य चिह्नानि दोषेऽपि गुणसंग्रहः ॥ ६० ॥

अन्वयः—असेवके अनुरक्तिः दानम् च सप्रियभाषणम् च दोषे अपि गुणसंग्रहः (इत्येतानि) अनुरक्तस्य चिह्नानि (सन्ति) ॥ ६० ॥

असेवके=सेवायाः अकर्तरि, अनुरक्तिः=अनुरागः, दानं=प्रियभाषणपूर्वकं किञ्चित्प्रदानम्, अनुरक्तस्य=स्नेहवतः, दोषे=असत्कार्ये, गुणसंग्रहः=गुणानामेव दर्शनम्; (इति प्राक्तनश्लोकद्वये वर्णितानि लक्षणानि स्नेहयुक्तस्य स्वामिनः सन्तीति योज्यम्) ॥

सेवा न करने पर भी उसके प्रति प्रेमभाव रखना, मीठी बातों के साथ कुछ देना और दोष से भी गुण ग्रहण करना यह प्रसन्न राजा के लक्षण हैं ॥ ६० ॥

अन्यच्च—कालयापनमाशानां वर्धनं फलखण्डनम्।
विरक्तेश्वरचिह्नानि जानीयान्मतिमान्नरः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—मतिमान् नरः कालयापनम् आशानाम् वर्धनम् फलखण्डनम् विरक्तेश्वरचिह्नानि जानीयात् ॥ ६१ ॥

कालयापनम्=समयनिर्वाहः ('आज दूँगा, कल दूँगा' इत्यादि कहकर समय टालना) आशानां वर्द्धनम्=वेतनवर्द्धनाद्याशायाः सततं वर्द्धनम्, फल-

खण्डनम्=जातेऽपि गले तन्निराकरणम्, विरक्तेश्वरचिह्नानि=विरक्तस्य स्वामिनो लक्षणानि ॥

और भी—बुद्धिमान को यह जान लेना चाहिए कि समय टालना, झूठी आशाएँ बढ़ाना और परिणाम को व्यर्थ कर देना–उदासीन राजा के लक्षण हैं ॥

एतज्ज्ञात्वा यथा चायं ममायत्तो भविष्यति, तथा वदिष्यामि । यतः—

ज्ञात्वा=विदित्वा, ममायत्तः=मदधीनः, वदिष्यामि=कथयिष्यामि ॥

यह समझ कर जैसे यह मेरे वश में हो वैसा ही कहूँगा । क्योंकि—

अपायसंदर्शनजां विपत्ति-
मुपायसंदर्शनजां च सिद्धिम् ।
मेधाविनो नीतिविधिप्रयुक्तां
पुरः स्फुरन्तीमिव दर्शयन्ति ॥ ६२ ॥

अन्वयः—मेधाविनः (नराः) नीतिविधिप्रयुक्ताम् अपायसंदर्शनजाम् विपत्तिम् उपायसंदर्शनजाम् सिद्धिम् पुरःस्फुरन्तीमिव दर्शयन्ति ॥ ६२ ॥

अपायसंदर्शनजाम्—अपायस्य=कार्यनाशस्य, संदर्शनात्=प्रदर्शनात् जायते =उत्पद्यते इति ताम्, उपायसंदर्शनजाम्—उपायस्य=कार्यसिद्धेः, संदर्शनात् जायते इति ताम्, मेधाविनः=बुद्धिमन्तो जनाः, नीतिविधिप्रयुक्ताम्=नीतिद्वारेण सम्पादिताम्, पुरःस्फुरन्तीमिव=प्रत्यक्षरूपेण भासमानामिव । बुद्धिमन्तो जनाः नीत्या, एवंकृते कार्यनाशेन विपत्तिः तथा अनेनोपायेन करणे कार्यसिद्धिर्भविष्यति इत्येवंप्रकारेण स्वामिनोऽग्रे प्रत्यक्षदृश्यमानामिव बोधयन्ति ।

बुद्धिमान् नीतिशास्त्र की विधियों का उचित प्रयोग करके दोषों से उत्पन्न हानि और उपायों से होने वाली सिद्धि को सामने झलकती हुई सी दिखाते हैं ॥

करटको ब्रूते–'तथाप्यप्राप्ते प्रस्तावे न वक्तुमर्हसि । यतः ।

अप्राप्ते=अनागते; प्रस्तावे=अवसरे ॥

करटक ने कहा—फिर भी बिना प्रसंग आए तो तुम कुछ भी न कह सकोगे ? क्योंकि—

अप्राप्तकालवचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।
प्राप्नुयाद्बुद्ध्यवज्ञानमपमानं च शाश्वतम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—अप्राप्तकालवचनम् ब्रुवन् बृहस्पतिः अपि बुद्ध्यवज्ञानम् च शाश्वतम् अपमानम् लभते ॥ ६३ ॥

अप्राप्तकालवचनम्—अप्राप्तः कालो यस्य तच्च तद्वचनञ्च = असामयिक-वाक्यम्, बुद्धयवज्ञानम्=बुद्धयनादरम्, शाश्वतम्–शश्वद्भवम् = सर्वदेत्यर्थः ।।

बृहस्पति भी बिना प्रसंग आए ही कोई बात कहने से मूर्ख समझे जाते हैं और उनका सर्वदा अनादर होने लगता है ।। ६३ ।।

दमनको ब्रूते—'मित्र, मा भैषीः । नाहमप्राप्तावसरं वचनं वदिष्यामि । यतः—

दमनक ने कहा—'मित्र डरो मत; मैं बिना अवसर आए कोई भी बात नहीं कहूँगा । क्योंकि—

आपद्युन्मार्गगमने कार्यकालात्ययेषु च ।
अपृष्टेनापि वक्तव्यं भृत्येन हितमिच्छता ।। ६४ ।।

अन्वयः—आपदि उन्मार्गगमने च कार्यकालात्ययेषु (सत्सु) अपृष्टेन अपि हितमिच्छता भृत्येन वक्तव्यम् ।। ६४ ।।

आपदि = स्वामिनो विपत्काले, उन्मार्गगमने = कुमार्गगमने, कार्यकालात्ययेषु = कार्यसमयातिक्रमणेषु, अपृष्टेन = अननुयुक्तेन, हितमिच्छता=हितैषिणा ।

आपत्ति में पड़ने, बुरे मार्ग में फँसे रहने तथा काम का समय बीत जाने पर स्वामी का हित चाहने वाले सेवक का कर्तव्य है कि बिना पूछे ही उचित बातें कह दे ।। ६४ ।।

यदि च प्राप्तावसरेणापि मया मन्त्रो न वक्तव्यस्तदा मन्त्रित्वमेव ममानुपपन्नम् । यतः—

प्राप्तावसरेण = लब्धावसरेण (मौका पाकर), मन्त्रः = उचितपरामर्शः, अनुपपन्नम् = असिद्धम्, व्यर्थमिति यावत् ।।

यदि अवसर पाकर भी मैं उसे उचित सलाह न दूं तो मेरा मंत्रित्व ही व्यर्थ हो जायगा । क्योंकि—

कल्पयति येन वृत्तिं येन च लोके प्रशस्यते ।
स गुणस्तेन च गुणिना रक्ष्यः संवर्धनीयश्च ।। ६५ ।।

अन्वयः—(भृत्यः) येन वृत्तिं कल्पयति, च लोके सद्भिः येन प्रशस्यते, स गुणः तेन रक्ष्यः च संवर्धनीयः ।। ६५ ।।

कल्पयति = कुरुते, लभते इत्यर्थः, येन = येन गुणेन, वृत्तिम् = जीविकाम्, प्रशस्यते = प्रशंसनीयो जायते, सद्भिः = सज्जनैः, रक्ष्यः = रक्षणीयः, संवर्धनीयः = वर्धितुं योग्यः ।।

जिस गुण से जीविका चलती है और जिससे संसार में सज्जनोंद्वारा प्रशंसा होती है, गुणी मनुष्य को उस गुण की रक्षा करनी चाहिए और उसे बढ़ाये रहना चाहिए।। ६५ ।।

'तद्भद्र ! अनुजानीहि माम्। गच्छामि।' करटको ब्रूते-'शुभमस्तु। शिवास्ते पन्थानः। यथाभिलषितमनुष्ठीयताम्' इति। ततो दमनको विस्मित इव पिङ्गलकसमीपं गतः।

अनुजानीहि माम्=स्वामिसमीपं गन्तुं मामाज्ञापय। अनुष्ठीयताम्=विधीयताम्, त्वयेति शेषः। विस्मित इव=आश्चर्यितवत्, सभयवत् इत्यर्थः ।।

अतः भद्र, मुझे आज्ञा दो। मैं जा रहा हूँ। करटक ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो और तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो। जाओ, अपनी इच्छा के अनुसार काम करो। इसके पश्चात् दमनक कुछ चकित-सा होकर पिंगलक के समीप गया।

अथ दूरादेव सादरं राज्ञा प्रवेशितः साष्टाङ्गप्रणिपातं प्रणिपत्योपविष्टः। राजाऽऽह---'चिराद् दृष्टोऽसि'। दमनको ब्रूते—'यद्यपि मया सेवकेन श्रीमद्देवपादानां न किञ्चित्प्रयोजनमस्ति, तथापि प्राप्तकालमनुजीविना सांनिध्यमवश्यं कर्तव्यमित्यागतोऽस्मि। किञ्च--

सादरम्=आदरपूर्वकम्, प्रवेशितः=कारितान्तःप्रवेशः, साष्टाङ्गप्रणिपातं प्रणिपत्य=साष्टाङ्गं पतित्वा प्रणम्य। श्रीमद्देवपादानाम्=भवच्चरणानाम्, भवतामित्यर्थः, प्राप्तकालम्=अवसरे प्राप्ते, अनुजीविना=सेवकेन, सांनिध्यम्=स्वामिनिकटगमनम् ।।

राजा ने उसे दूर ही से आदर के साथ अपने पास बुलाया। वह साष्टाङ्ग प्रणाम करके बैठ गया। राजा ने कहा—बहुत दिनों के बाद दिखाई पड़े। दमनक ने कहा—यद्यपि हमारे जैसे तुच्छ सेवक की स्वामी की कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी सेवक को समय पड़ने पर स्वामी के पास अवश्य जाना चाहिए। इसी नाते आया हूँ। क्योंकि—

दन्तस्य निर्घर्षणकेन राजन् कर्णस्य कण्डूयनकेन वापि।
तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां किमङ्गवाक्पाणिमता नरेण ।।६६।।

अन्वयः—हे राजन्! दन्तस्य निर्घर्षणकेन वा कर्णस्य कण्डूयनकेन तृणेन अपि ईश्वराणाम् प्रयोजनं भवति, (तर्हि) अङ्गवाक्पाणिमता नरेण किम् (वक्तव्यम्, तेन त्ववश्यं प्रयोजनं भविष्यतीति भावः) ।। ६६ ।।

निर्घर्षणकेन=सङ्घर्षणकृता (खोदनेवाले), कण्डूयनकेन=कण्डूयनकारिणा (खुजलानेवाले), ईश्वराणाम्=स्वामिनाम्, अङ्गवाक्पादमता=वचनहस्त-

पादयुक्तेन। यदि तुच्छतमतृणेनापि राज्ञां दन्तनिर्घर्षणाद्यर्थं प्रयोजनं भवति, तर्हि वक्त्रा हस्तपादयुक्तेन नरेण कथं न प्रयोजनं भवति, अपि तु भवत्येवेति भावः॥

हे राजन्, दाँत खोदने और कान खुजलाने के लिए राजाओं को तिनके की भी आवश्यकता पड़ जाती है तो फिर अङ्ग हाथ पैरवाले मनुष्य की तो बात ही क्या है ! ॥ ६६ ॥

यद्यपि चिरेणावधीरितस्य देवपादैर्मे बुद्धिनाशः शंक्यते, तदपि न शङ्कनीयम्। यतः—

अवधीरितस्य=तिरस्कृतस्य, देवपादैः=भवद्भिः॥

यद्यपि आपने बहुत दिनों से मेरी उपेक्षा की है जिससे आपको यह शंका हो सकती है कि कहीं आपकी उपेक्षा से मेरी बुद्धि ही नष्ट न हो गयी हो। फिर भी आप को ऐसी शङ्का नहीं होनी चाहिए। क्योंकि—

कदर्थितस्यापि च धैर्यवृत्तेर्बुद्धेर्विनाशो नहि शङ्कनीयः।
अधःकृतस्यापि तनूनपातो नाधः शिखा याति कदाचिदेव॥

अन्वयः—कदर्थितस्य अपि धैर्यवृत्तेः (जनस्य) बुद्धिनाशः न हि शङ्कनीयः, (यतः) अधःकृतस्य अपि तनूनपातः शिखा कदाचिदेव अधः न याति॥६७॥

कदर्थितस्य=स्वामिना तिरस्कृतस्य, धैर्यवृत्तेः=धीरस्य, बुद्धिनाशः=बुद्धिभ्रंशः, अधःकृतस्य=नीचैर्विहितस्य; तनूनपातः—तनूं न पातयतीति तनूनपात् 'नभ्राण्नपात—' इति निपातितः, तस्य=अग्नेः, शिखा=ज्वाला, कदाचिदेव=कदाचिदपि, अत्र 'एव' शब्दोऽप्यर्थकः॥

अपमानित हुए धैर्यशाली व्यक्ति की बुद्धि नष्ट हो जाती है ऐसी शंका कभी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि आग को नीचे की ओर करने पर भी उसकी लपट कभी भी नीचे की ओर नहीं जाती॥ ६७॥

देव, तत्सर्वथा विशेषज्ञेन स्वामिना भवितव्यम्। यतः--

सर्वथा=सर्वैः प्रकारैः, विशेषज्ञेन=कस्मिन् भृत्ये का विशेषता इति ज्ञानवता॥

इसलिए हे राजन्, स्वामी को भली भाँति विवेकी होना चाहिए। क्योंकि—

मणिर्लुठति पादेषु काचः शिरसि धार्यते।
यथैवास्ते तथैवास्तां काचः काचो मणिर्मणिः॥ ६८॥

अन्वयः—(यदि जारकस्य अज्ञानतया) मणिः पादेषु लुठति, काचः शिरसि धार्यते (तर्हि स मणिः काचश्च) यथा एव आस्ते तथा एव आस्ताम्, (परन्तु काचः काचः (एव अस्ति, तथा) मणिः मणिः (एव अस्ति)॥ ६८॥

मणिः=रत्नम्, लुठति=धारितः तिष्ठति । यदि मणिकाचयोरनुचितस्थाने ग्रहणेनापि तयोर्गुणः नाल्पमपि हीयते इत्यर्थः ।।

यदि मणि को पैरों पर डाल दिया जाय और काँच को शिर पर धारण कर लिया जाय तो भी जो जैसा है, वह वैसा ही रहेगा। काँच (शीशा) काँच ही रहेगा और मणि मणि ही रहेगी ।। ६८ ।।

अन्यच्च—निर्विशेषो यदा राजा समं सर्वेषु वर्तते ।
तदोद्यमसमर्थानामुत्साहः परिहीयते ।। ६९ ।।

अन्वयः—यदा राजा निर्विशेषः (सन्) सर्वेषु समं वर्तते, यदा उद्यम समर्थानाम् उत्साहः परिहीयते ।। ६९ ।।

निर्विशेषः=गुणतारतम्यस्य अज्ञः, सर्वेषु=समस्तेषु, गुणवत्सु गुणहीनेषु चेत्यर्थः, उद्यमसमर्थानाम्=उद्योगिनाम्, परिहीयते=हीनो भवति ।।

और भी—जब राजा सेवक की विशेषताओं पर ध्यान दिए बिना ही सभी के साथ समान व्यवहार करता है तो उद्यमी सेवक का उत्साह ठंढा पड़ जाता है।।

किञ्च—त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेत्तथैवैतांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ।। ७० ।।

अन्वयः—राजन् ! उत्तमाधममध्यमाः (इति) त्रिविधाः पुरुषाः (भवन्ति, अतः राजा एतान् त्रिविधेषु एव कर्मसु तथा एव योजयेत् ।। ७० ।।

त्रिविधाः=त्रिप्रकाराः, उत्तमाधममध्यमाः=श्रेष्ठाः नीचाः साधारणाश्च । नियोजयेत्–नियुक्तान् कुर्यात्, त्रिविधेषु=उत्तमनीचासाधारणेषु ।।

और भी—हे राजन् ! मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम । इस लिए इन तीनों प्रकार के मनुष्यों को तीन प्रकार के कार्यों—उत्तम, मध्यम और अधम में ही लगाना चाहिए ।। ७० ।।

यतः—स्थान एव नियोज्यन्ते भृत्याश्चाभरणानि च ।
नहि चूडामणिः पादे नूपुरं शिरसा कृतम् ।। ७१ ।।

अन्वयः—भृत्याः आभरणानि च स्थाने एव नियोज्यन्ते, पादे चूडामणिः शिरसा नूपुरम् नहि कृतम् (भवति) ।। ७१ ।।

स्थाने=योग्यस्थाने, आभरणानि=अलङ्कारा:, चूडामणि:-शिरोभूषणम्, नूपुरम्=चरणभूषणम् (पावजेव, पैजनी)

और भी--सेवक और आभूषण को उचित स्थान ही पर नियुक्त करना चाहिए, क्योंकि चूड़ामणि पैर में और नूपुर सिर पर कभी नहीं धारण किया जा सकता है ॥ ७१ ॥

अपि च—कनकभूषणसंग्रहणोचितो
यदि मणिस्त्रपुणि प्रणिधीयते ।
न स विरौति न चापि न शोभते
भवति योजयितुर्वचनीयता ॥ ७२ ॥

अन्वय:--यदि कनकभूषणसंग्रहणोचित: मणि: त्रपुणि प्रणिधीयते, स न विरौति, च न, शोभते इति न (किन्तु) योजयितु: वचनीयता । (भवति)॥७२॥

कनकभूषणसंग्रहणोचित:--स्वर्णालङ्कारे जटितुं योग्य:, त्रपुणि=पिच्चटे, तुच्छतमधातुविशेषे (रांगा) नामके, विरौति=विरुद्धं शब्दायते, नचापि०=न शोभते इति न अपि तु शोभत एव । योजयितु:=त्रपुणो भूषणे योजकस्य, वचनीयता=निन्दा ॥

और भी--सोने के आभूषण में जड़ी जाने के योग्य मणि यदि राँगे में जड़ दी जाय तो न तो वह रोती है और भली नहीं लगती, यह बात नहीं है, किन्तु भली लगती ही है, इसमें तो उसके जड़नेवाले की ही निन्दा होती है ॥

अन्यच्च—मुकुटे रोपिता काचश्चरणाभरणे मणिः ।
नहि दोषो मणेरस्ति किन्तु साधोरविज्ञता ॥ ७३ ॥

अन्वय:—(यदि) मुकुटे काच: (च) चरणाभरणे मणि: रोपित: (भवति, तदा) मणे: दोष: न हि अस्ति, किन्तु साधो: अविज्ञता (भवति) ॥७३॥

मुकुटे=शिरोधार्यभूषणविशेषे, रोपित:=जटित: (जड़ा गया), चरणाभरणे=पादभूषणे नूपुरादौ, साधो:=वणिज: (साहूकारकी), अविज्ञता=विशिष्टज्ञानहीनता ॥

और भी—यदि मुकुट में काँच और पैर के गहने में मणि जड़ दी जाय तो इसमें मणि का कोई भी दोष नहीं । बल्कि ऐसा करने वाला साहूकार ही मूर्ख समझा जायगा ॥ ७३ ॥

पश्य——बुद्धिमाननुरक्तोऽयमयं शूर इतो भयम् ।
इति भृत्यविचारज्ञो भृत्यैरापूर्यते नृपः ॥ ७४ ॥

अन्वयः——अयम् बुद्धिमान् अनुरक्तः, अयम् शूरः, इतः भयम् (अस्ति); इति भृत्यविचारज्ञः नृपः भृत्यैः आपूर्यते ॥ ७४ ॥

अनुरक्तः=अनुरागपूर्णः, शूरः=वीरः, इतः=अस्मात् भृत्यादिति शेषः; इति=इत्थम्, भृत्यविचारज्ञः=भृत्यविचारज्ञानपूर्णः, आपूर्यते=परिपूर्णो भवति । बुद्धिमदादिभृत्यज्ञानवतः नृपस्य समीप एव भृत्या सदा तिष्ठन्तीति भावः ।

देखिये——यह सेवक बुद्धिमान् है, यह मुझमें अनुरक्त है, यह वीर है, इससे मुझे भय है——इस प्रकार सेवकों के विषय में ज्ञान रखने वाला स्वामी सर्वदा सेवकों से भरा-पूरा रहता है ॥ ७४ ॥

तथा हि——अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च ।
पुरुषविशेषं प्राप्य हि भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥ ७५ ॥

अन्वयः—अश्वः शस्त्रम् शास्त्रम् वीणा वाणी च नरः च नारी (एते) पुरुषविशेषं प्राप्य योग्याः अयोग्याः च भवन्ति ॥ ७५ ॥

पुरुषविशेषम्=योग्यमयोग्यं वा नरम् ॥

जैसा कि—घोड़ा, हथियार, शास्त्र, वीणा, वाणी, पुरुष और स्त्री—ये सब योग्य या अयोग्य पुरुष के हाथों में पड़ कर योग्य या अयोग्य बन जाते हैं॥७५॥

अन्यच्च——किं भक्तेनासमर्थेन किं शक्तेनापकारिणा ।
भक्तं शक्तं च मां राजन्नवज्ञातुं त्वमर्हसि ॥ ७६ ॥

अन्वयः——भक्तेन (परन्तु) असमर्थेन (भृत्येन) किम् (अस्ति) ?, अपकारिणा शक्तेन किम् (अस्ति) ?; हे राजन् ! (त्वम्) भक्तम् च शक्तम् माम् अवज्ञातुम् न अर्हसि ॥ ७६ ॥

भक्तेन=भक्तियुक्तेन; असमर्थेन=सामर्थ्यहीनेन, शक्तेन=सामर्थ्ययुक्तेन, अपकारिणा=अपकारकारिणा, अवज्ञातुम्=तिरस्कर्तुम्, अर्हसि=योग्योऽसि ॥

स्वामिभक्त होते हुए भी शक्तिहीन सेवक से कोई लाभ नहीं, उसी प्रकार शक्तिशाली होते हुए भी बुरा चाहने वाले सेवक से भी कोई लाभ नहीं । इस लिए आप को स्वामिभक्त शक्तिसम्पन्न मेरे जैसे सेवक का निरादर करना उचित नहीं है ॥ ७६ ॥

यतः—अवज्ञानाद्राज्ञो भवति मतिहीनः परिजनः
ततस्तत्प्रामाण्याद्भवति न समीपे बुधजनः ।
बुधैस्त्यक्ते राज्ये नहि भवति नीतिर्गुणवती
विपन्नायां नीतौ सकलमवश सीदति जगत् ॥ ७७ ॥

अन्वयः--राज्ञः अवज्ञानात् परिजनः मतिहीनः भवति, ततः तत्प्रामाण्यात् बुधजनः समीपे न भवति, बुधैः त्यक्ते राज्ये गुणवती नीतिः न भवति, नीतौ विपन्नायाम् अवशम् सकलम् जगत् अवसीदति ॥ ७७ ॥

अवज्ञानात्=तिरस्कारात्, परिजनः=भृत्यसमूहः, तत्प्रामाण्यात्=बुद्धिहीनपरिजनस्य वाक्प्रामाण्येन, बुधजनः=विद्वज्जनः, बुधैः त्यक्ते=विद्वज्जनहीने, गुणवती=प्रशस्तगुणयुक्ता, विपन्नायाम्=नष्टायाम्, सकलम्=सर्वम्, सीदति=पीडितं भवति, नश्यतीति भावः ॥

क्योंकि--राजा के निरादर करने से सेवक बुद्धिहीन हो जाता है, जिससे उन्हीं को प्रमाण मान कर विद्वान् लोग उसके समीप ही नहीं जाते और बुद्धिमानों के द्वारा छोड़े गये राज्य में नीति गुणशालिनी नहीं होती तथा नीति के दूषित हो जाने से सारी प्रजा उच्छृङ्खल होकर नष्ट हो जाती है ॥ ७७ ॥

अपरञ्च--जनं जनपदा नित्यमर्चयन्ति नृपार्चितम् ।
नृपेणावमतो यस्तु स सर्वैरवमन्यते ॥ ७८ ॥

अन्वयः–जनपदाः नृपार्चितम् जनम् नित्यम् अर्चयन्ति, तु यः नृपेण अवमतः, सः सर्वैः अवमन्यते ॥ ७८ ॥

जनपदाः=देशाः; तत्स्था देशवासिन इत्यर्थः, नृपार्चितम्=राज्ञा सत्कृतम्, अवमतः=अनादृतः, अवमन्यते=अनाद्रियते ॥

और भी—हे राजन् राजा द्वारा सम्मानित व्यक्ति का प्रजा भी सम्मान करती है, किन्तु जो राजा से अपमानित होता है, वह सभी लोगों द्वारा अपमानित होता है ॥ ७८ ॥

किञ्च--बालादपि ग्रहीतव्यं युक्तमुक्तं मनीषिभिः ।
रवेरविषये किं न प्रदीपस्य प्रकाशनम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः—मनीषिभिः युक्तम् उक्तम् बालात् अपि ग्रहीतव्यम्, रवेः अविषये किम् प्रदीपस्य प्रकाशनम् न (गृह्यते)

बालात्=बालकात्; युक्तम्=योग्यम्, उक्तम्=कथितं वचनम्, मनीषिभिः=बुद्धिमद्भिः, रवेरविषये=सूर्येऽविद्यमाने, प्रदीपस्य=दीपकस्य, प्रकाशनम्=प्रकाशः, सूर्याभावे दीपप्रकाशग्रहणवद्विद्वज्जनोक्त्यप्रभावे बालकोक्तमप्युचितवचनं ग्रहणीयमेवेत्याशयः ॥

और भी—विद्वानों को बालक द्वारा भी कही गई उचित बात मान लेनी चाहिए। जहाँ सूर्य का प्रकाश काम नहीं देता वहाँ क्या दीपक नहीं जलाया जाता ? ॥ ७१ ॥

पिङ्गलकोऽवदत्—'भद्र दमनक ! किमेतत् ?। त्वमस्मदीयप्रधानामात्यपुत्र इयन्तं कालं यावत्कुतोऽपि खलवाक्यान्नागतोऽसि। इदानीं यथाभिमतं ब्रूहि।' दमनको ब्रूते—'देव, पृच्छामि किञ्चित्। उच्यताम्। उदकार्थी स्वामी पानीयमपीत्वा किमिति विस्मित इव तिष्ठति।' पिङ्गलकोऽवदत्—'भद्रमुक्तं त्वया। किन्त्वेतद्रहस्यं वक्तुं काचिद्विश्वासभूमिर्नास्ति। तथापि निभृतं कृत्वा कथयामि। शृणु। सम्प्रति वनमिदमपूर्वसत्त्वाधिष्ठितमतोऽस्माकं त्याज्यम्। अनेन हेतुना विस्मितोऽस्मि। तथा च श्रुतो मयापि महानपूर्वशब्दः। शब्दानुरूपेणास्य प्राणिनो महता बलेन भवितव्यम्।' दमनको ब्रूते—देव ! अस्ति तावदयं महान् भयहेतुः। स शब्दोऽस्याभिरप्याकर्णितः। किन्तु स किं मन्त्री यः प्रथमं भूमित्यागं पश्चाद्युद्धं चोपदिशति अस्मिन् कार्यसन्देहे भृत्यानामुपयोग एव ज्ञातव्यः। यतः—

भद्र=कल्याणिन् !, अस्मदीयप्रधानामात्यपुत्रः—अस्मन्मुख्यमन्त्रिसुतः, इयन्तं कालं यावत्=एतावत्कालपर्यन्तम्, कुतोऽपि=कस्माच्चित्, खलवाक्यात्=दुर्जनोक्तेः। यथाभिमतम्=स्वाभीष्टानुसारम्। उदकार्थी=जलाभिलाषी स्वामी=प्रभुः, भवानिति यावत्, किमिति=कथम्, विस्मित इव=भीतवत्, भद्रम्=सम्यक्। रहस्यस्य=गुप्तविषयस्य, विश्वासभूमिः=विश्वासस्थानम्। निभृतम्=एकान्तम्, निर्जनमिति भावः। सम्प्रति=अस्मिन् समये, अपूर्वसत्त्वाधिष्ठितम्—अपूर्वेण=नवागन्तुकेन, सत्त्वेन=जीवेन, अधिष्ठितम्=कृताधिष्ठानम् अत्र वने कोऽपि नवीनो जन्तुस्तिष्ठतीति यावत्। श्रुतः=आकर्णितः, अपूर्वशब्दः=अश्रुतपूर्वो ध्वनिः, शब्दानुरूपेण=ध्वन्यनुसारम्, प्राणिनः=जन्तोः, भयहेतुः=भयस्य कारणम्, आकर्णितः=श्रुतः। भूमित्यागम्=निवासस्थानत्यागम्, उपदिशति=मन्त्रयति, भृत्यानाम्=सेवकानाम्, उपयोगः=उपयोगिता ॥

पिंगलक ने कहा—भद्र दमनक; यह क्या ? तुम हमारे प्रधानमंत्री के पुत्र

हो। पता नहीं, किस दुष्ट की बात में पड़कर इतने दिनों तक तुम नहीं आये। अब तुम अपनी बात कहो। दमनक ने कहा—'देव, मैं आप से कुछ पूछना चाहता हूँ। यह बताइए कि आप पानी पीने तो गए, किन्तु बिना पानी पिए ही क्यों इस प्रकार चकित-सा होकर बैठे हैं? पिङ्गलक ने कहा—'तुमने ठीक ही कहा है, किन्तु इस रहस्य को बताने के लिए कोई विश्वासपात्र ही नहीं है फिर भी मैं चुपके से कह रहा हूँ। सुनो—इस समय इस जंगल में कोई अपूर्व जानवर आ गया है, अतः मुझे यह स्थान छोड़ देना चाहिए। इसी कारण मैं चकित हूँ। मैंने भी उसका महान् अपूर्व शब्द सुना है। शब्द के अनुसार तो उस प्राणी को बहुत ही बलवान् होना चाहिए।' दमनक ने कहा—'देव, यह तो बड़े ही भय का कारण है। वह शब्द हमलोगों ने भी सुना है। किन्तु वह मंत्री कैसा, जो पहले स्थान छोड़ देने और फिर युद्ध करने की सलाह दे। ऐसे ही सन्देहात्मक विषय में सेवकों की उपयोगिता समझनी चाहिए। क्योंकि—

बन्धुस्त्रीभृत्यवर्गस्य बुद्धेः सत्त्वस्य चात्मनः।
आपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम्' ॥ ८०॥

अन्वयः—नरः बन्धुस्त्रीभृत्यवर्गस्य, बुद्धेः सत्त्वस्य च आत्मनः सारताम् आपन्निकषपाषाणे जानाति ॥ ८० ॥

बन्धुस्त्रीभृत्यवर्गस्य—बन्धूनाम्=बान्धवानाम्, स्त्रीणाम्=पत्नीनाम्, भृत्यानां च=सेवकानां च, वर्गस्य=समूहस्य, सत्त्वस्य=बलस्य, आत्मनः=स्वस्य, आपन्निकषपाषाणे—आपत्=विपत्तिरेव, निकषपाषाणः=सुवर्णपरीक्षकप्रस्तरः (कसौटी) सारताम्=श्रेष्ठताम्। यथा निकषप्रस्तरे सुवर्णस्य अधमोत्तमत्वं ज्ञायते, तथैव आपत्तौ बन्धुस्त्र्यादेः सारत्वं नरः जानाति इत्याशयः ॥

भाई, स्त्री, सेवक वर्ग, बुद्धि और अपने बल को आपत्तिरूपी कसौटी पर कस कर ही मनुष्य उसका तत्त्व समझ सकता है ॥ ८० ॥

सिंहो ब्रूते—'भद्र, महती शङ्का मां बाधते।' दमनकः, पुनराह स्वगतम्—'अन्यथा राज्यसुखं परित्यज्य स्थानान्तरं गन्तुं कथं मां सम्भाषसे।' प्रकाशं ब्रूते—'देव! यावदहं जीवामि तावद्भयं न कर्तव्यम्। किन्तु करटकादयोऽप्याश्वास्यन्तां यस्मादापत्प्रतीकारकाले दुर्लभः पुरुषसमवायः—

माम्=पिङ्गलकम्, बाधते=पीड़यति। स्वगतम्=स्वमनसि, तमश्रावयित्वेत्यर्थः। अन्यथा=भयाभावे सति, स्थानान्तरम्=अन्यत् स्थानम्, सम्भाषसे=कथयसि, प्रकाशम्=स्पष्टम्, सिंहं श्रावयित्वा, करटकादयः=करटकप्रभृ-

तयः; आश्वास्यन्ताम् = आश्वासनीयाः, करटकादीनप्याश्वासयेत्यर्थः। यतः = यस्मात् कारणात्, आपत्प्रतीकारकाले = विपन्निराकरणक्षणे पुरुषसमवायः = शक्तानुरक्तसेवकसमूहसमागमः ।।

सिंह ने कहा—'भद्र, मुझे बहुत बड़ी शंका सता रही है। दमनक ने मन ही मन कहा—'ऐसा न होता तो राज्यसुख छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाने की बात ही क्यों मुझसे कहते ?' उसने प्रकट रूप में कहा—'राजन् ! जब तक मैं जीवित हूँ; तब तक आप को डरना नहीं चाहिए। किन्तु करटक इत्यादि को भी आश्वासन दे दें, क्योंकि विपत्ति का सामना करने के समय पुरुषों का एकत्रित होना कठिन होता है।

ततस्तौ दमनककरटकौ राज्ञा सर्वस्वेनापि पूजितौ भयप्रतीकारं प्रतिज्ञाय चलितौ। करटको गच्छन् दमनकमाह—'सखे, किं शक्यप्रतीकारो भयहेतुरशक्यप्रतीकारो वेति न ज्ञात्वा भयोपशमं प्रतिज्ञाय कथमयं महाप्रसादो गृहीतः ?। यतोऽनुपकुर्वाणो न कस्याप्युपायनं गृह्णीयाद्विशेषतो राज्ञः। पश्य—

सर्वस्वेन = सर्वविधधनेन, प्रचुरद्रव्येणेति यावत्, भयप्रतीकारं प्रतिज्ञाय = तद्भयं निराकरिष्याव इति प्रतिज्ञां कृत्वा। शक्यप्रतीकारः = निवारयितुं शक्यः, भयहेतुः = भयकारणम्, भयोपशमम् = भयनिवारणम्, प्रतिज्ञाय = प्रतिज्ञां कृत्वा, महाप्रसादः = स्वामिदत्तः श्रेष्ठः पुरस्कारः। अनुपकुर्वाणः = उपकारमकुर्वन्, उपायनम् = उपहारम् (भेंट) ।।

इसके पश्चात् दमनक और करटक राजा से भली भाँति सम्मानित होकर भय दूर करने की प्रतिज्ञा करके चले। करटक ने चलते समय दमनन से कहा—मित्र, भय का कारण दूर हो सकने योग्य है अथवा नहीं—बिना इसे समझे ही भय दूर करने की प्रतिज्ञा करके क्यों तुमने इस बड़े पुरस्कार को ले लिया ? क्योंकि बिना उपकार किए किसी का पुरस्कार नहीं लेना चाहिए, और विशेष कर राजा का तो अवश्य नहीं। देखो—

यस्य प्रसादे पद्माऽऽस्ते विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ।। ८१ ।।

अन्वयः—यस्य प्रसादे पद्मा च पराक्रमे विजयः आस्ते, च क्रोधे मृत्युः वसति सः हि सर्वतेजोमयः (अस्ति) ।

यस्य = नृपस्य, प्रसादे = प्रसन्नतायाम्, पद्मा = लक्ष्मीः, आस्ते = वर्तते, यस्मिन् प्रसन्ने लक्ष्मीर्भवति इत्यर्थः, मृत्युः = मरणम्, सर्वतेजोमयः = समस्ततेजोयुक्तः ।।

जिसकी कृपा में लक्ष्मी, पौरुष में विजय तथा क्रोध में मृत्यु का निवास होता है; इसी से वह सभी तेजों से पूर्ण होता है ॥ ८१ ॥

तथा हि—बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति' ॥८२॥

अन्वयः—(अयम्) मनुष्यः (अस्ति), इति (विदित्वा) बालः अपि भूमिपः न अवमन्तव्यः, हि एषा महती देवता नररूपेण तिष्ठति ॥ ८२ ॥

अवमन्तव्यः=तिरस्कर्तव्यः, भूमिपः=राजा, महती=बहुशक्तियुक्ततया श्रेष्ठा ।

जैसा कि—बालक राजा को भी मनुष्य समझ कर उसका निरादर नहीं करना चाहिए । वह तो एक बड़ा देवता होता है, जो मनुष्यरूप में पृथ्वी पर निवास करता है ॥ ८२ ॥

दमनको विहस्याह—'मित्र ! तूष्णीमास्यताम् । ज्ञातं मया भयकारणम् । बलीवर्दनर्दितं तत् । वृषभाश्चास्माकमपि भक्ष्याः । किं पुनः सिंहस्य ।' करटको ब्रूते—'यद्येवं तदा किं पुनः स्वामित्रासस्तत्रैव किमिति नापनीतः ।' दमनको ब्रूते—'यदि स्वामित्रासस्तत्रैव मुच्यते तदा कथमयं महाप्रसादलाभः स्यात् । अपरञ्च —

तूष्णीमास्यताम्=त्वया मौनेन स्थीयताम्, बलिवर्दनर्दितम्=वृषभगर्जनम्, भक्ष्याः=भोज्याः । स्वामित्रासः=स्वामिनो भयम्, अपनीतः=दूरीकृतः । मुच्यते=दूरीक्रियते ॥

दमनक ने हँसकर कहा—'मित्र, चुप रहो । मैंने भय का कारण समझ लिया है । वह बैल का शब्द है । बैल हम लोगों का भोजन है, फिर सिंह की तो बात ही क्या' ? करटक ने कहा—'यदि ऐसी बात है तो फिर तुमने स्वामी के भय को वहीं क्यों नहीं दूर कर दिया' ? दमनक ने कहा—'यदि स्वामी का भय वहीं दूर कर देता तो यह इतना बड़ा उपहार कैसे प्राप्त होता ? और भी—

निरपेक्षो न कर्तव्यो भृत्यैः स्वामी कदाचन ।
निरपेक्षं प्रभुं कृत्वा भृत्यः स्याद्दधिकर्णवत् ॥ ८३ ॥

अन्वयः—भृत्यैः कदाचन स्वामी निरपेक्षः न कर्तव्यः । प्रभुं निरपेक्षं कृत्वा भृत्यः दधिकर्णवत् स्यात् ॥ ८३ ॥

निरपेक्षः=अपेक्षाहीनः, कदाचन=कदाचित् । दधिकर्णवत्—दधिकर्णेन इति विग्रहे 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इति वतिप्रत्ययः='दधिकर्ण' नामकबिडालतुल्यः । स्यात्=भवेत् ॥

सेवक को चाहिए कि वह कभी भी स्वामी को निरपेक्ष बना देने से अनावश्यक समझने वाला) नहीं करे, क्योंकि स्वामी को निरपेक्ष बना देने से सेवक की दशा दधिकर्ण के समान हो जाती है ।। ८३ ।।

करटकः पृच्छति—'कथमेतत् ?' दमनकः कथयति—

करटक ने पूछा—'यह कैसे ?' दमनक ने कहा—

अस्त्युत्तरापथेऽर्बुदशिखरनाम्नि पर्वते दुर्दान्तो नाम महाविक्रमः सिंहः। तस्य पर्वतकन्दरमधिशयानस्य केसराग्रं कश्चिन्मूषिकः प्रत्यहं छिनत्ति। ततः केसराग्रं लूनं दृष्ट्वा कुपितो विवरान्तर्गतं मूषिकमलभमानोऽचिन्तयत्—

महाविक्रमः=अतीव पराक्रमी, पर्वतकन्दरम्=गिरिगुहाम्, अधिशयानस्य=सुप्तस्य, केसराग्रम्=ग्रीवोपरिस्थबालसमूहाग्रमित्यर्थः, लूनम्=छिन्नम्, विवरान्तर्गतम्=बिलस्याभ्यन्तरे प्रविष्टम्, अलभमानः=अप्राप्नुवन्। विधेयम्=कर्तव्यम् ।।

भारत के उत्तरी प्रदेश मे अर्बुदशिखर नाम के पहाड़ पर दुर्दान्त नाम का एक बड़ा बलवान् सिंह रहता था। पर्वत की गुफा में सोने के समय कोई चूहा नित्य उसके अयाल (गर्दन का बाल) का अगला भाग कुतर देता था। इस तरह अपने अयाल को कटा हुआ देखकर तथा बिल में रहने वाले चूहे को न पाकर क्रुद्ध सिंह ने विचार किया—

'क्षुद्रशत्रुर्भवेद्यस्तु विक्रमान्नैव लभ्यते।
तमाहन्तुं पुरस्कार्यः सदृशस्तस्य सैनिकः' ।। ८४ ।।

अन्वयः—यः तु क्षुद्रशत्रुः भवेत्, (स यदि) विक्रमात् न एव लभ्यते; (तर्हि) तम् आहन्तुम् तस्य सदृशः सैनिकः पुरस्कार्यः ।। ८४ ।।

क्षुद्रशत्रुः=नीचो रिपुः, विक्रमात्=पराक्रमेण, लभ्यते=प्राप्यते, तम्=क्षुद्ररिपुम्, आहन्तुम्=मारयितुम्, पुरस्कार्यः=पुरस्कर्तव्यः ।।

छोटा शत्रु बल से नहीं पकड़ा जा सकता है। उसे मारने के लिए उसी के समान छोटे सैनिक को पुरस्कृत करना चाहिए ।। ८४ ।।

इत्यालोच्य तेन ग्रामं गत्वा विश्वासं कृत्वा दधिकर्णनामा बिडालो यत्नेनानीय मांसाहारं दत्त्वा स्वकन्दरे स्थापितः। अनन्तरं तद्भयान्मूषिकोऽपि बिलान्न निःसरति, तेनासौ सिंहोऽक्षतकेशरः सुखं स्वपिति। मूषिकशब्दं यदा यदा शृणोति, तदा तदा मांसाहारदानेन तं बिडालं संवर्धयति।

इत्यालोच्य = एवं विचार्य, विडाल: = मार्जार:, यत्नेन = प्रयत्नपूर्वकम्; मांसाहारम् = मांसभोजनम्, स्वकन्दरे = स्वावासगुहायाम् । तदनन्तरम् = सिंहेन विडालस्य स्थापनानन्तरम्, तद्भयात् = विडालभयात् अक्षतकेसर: = अलूनसट:, सुखम् = सुखपूर्वकम्, स्वपिति = शेते । मांसाहारदानेन = मांसभोजनं दत्त्वा, संवर्धयति = मुषिकवधायोत्साहितं करोति ॥

ऐसा विचार कर वह गाँव गया और विश्वास देकर बड़े प्रयत्न से दधिकर्ण नामक बिलार को लाकर मांस का भोजन दे-देकर उसे अपनी गुफा में रख लिया । इसके पश्चात् चूहा भी उसके डर के कारण बिल से नहीं निकलता था । जिससे सिंह की गर्दन के बाल काटे जाने से बचने लगे और वह सुख की नींद सोने लगा । वह जब चूहे की आवाज सुनता तब मांस का भोजन दे-देकर बिलार का पालन पोषण करता ।

अथैकदा च मूषिक: क्षुधापीडितो बहि: सञ्चरन् बिडालेन प्राप्तो व्यापादितश्च । अनन्तरं स सिंहोऽनेककालं यावन्मूषिकं न पश्यति तत्कृतरावमपि न शृणोति, तदा तस्यानुपयोगाद् बिडालस्याप्याहार-दाने मन्दादरो बभूव । ततोऽसावाहारविरहाद् दुर्बलो दधिकर्णोऽवसन्नो बभूव । अतोऽहं ब्रवीमि—'निरपेक्षो न कर्तव्य' इत्यादि । ततो दमनककरटकौ संजीवकसमीपं गतौ । तत्र करटकस्तरुतले साटोपमुपविष्ट: ।

क्षुधापीडित: = क्षुत्पीडायुक्त:, सञ्चरन् = भ्रमन्, व्यापादित: = हत: । अनेककालम् = चिरकालपर्यन्तम्, तत्कृतारावम् = मूषिककृतशब्दम्, तस्य = दधिकर्णाख्यविडालस्य, अनुपयोगात् = उपयोगाभावात्, आहारदाने = भोजनप्रदाने, मन्दादर: = शिथिलादर: । तरुतले = वृक्षाधो भागे, साटोपम् = आडम्बरयुक्तम् ॥

एक दिन चूहा भूख से व्याकुल होकर बाहर घूमते समय बिल्ली द्वारा पकड़ लिया गया और मार डाला गया । इसके बाद बहुत दिनों तक जब सिंह ने चूहे को नहीं देखा और न तो उसके शब्द ही को सुना तो दधिकर्ण बिलार की उपयोगिता न रह जाने पर भोजन देने में भी उपेक्षा करने लगा । जिससे वह भोजन न मिलने के कारण दुर्बल हो गया और कुछ दिनों के बाद मर गया । इसी लिए मैंने कहा है कि 'स्वामी को निरपेक्ष नहीं करना चाहिए इत्यादि । इसके बाद दमनक और करटक सञ्जीवक के पास गए । वहाँ एक वृक्ष के नीचे करटक बड़े रोब दाब के साथ बैठ गया ।

दमनकः संजीवकसमीपं गत्वाब्रवीत्—'अरे वृषभ ! एषोऽहं राज्ञा पिङ्गलकेनारण्यरक्षार्थे नियुक्तः। सेनापतिः करटकः समाज्ञापयति—' सत्वरमागच्छ। न चेदस्मादरण्याद् दूरमपसर। अन्यथा ते विरुद्धं फलं भविष्यति। न जाने क्रुद्धः स्वामी किं विधास्यति।' तच्छ्रुत्वा संजीवकश्चायात्। यतः—

अरण्यरक्षार्थम्=वनस्य रक्षायै, नियुक्तः=अधिकृतः। सत्वरम्=शीघ्रम्, चेत्=अन्यथा, आगमनाभावे इत्यर्थः, अपसर=गच्छ। अन्यथा=मन्निकटमागमनाभावे दूरमपसरणाभावे च विरुद्धम्=विपरीतम्। विधास्यति=करिष्यति। आयात्=आगतः॥

दमनक ने सञ्जीवक के पास जाकर कहा—अरे बैल ! मुझे राजा पिंगलक ने इस जंगल की रखवाली करने के लिये नियुक्त किया है। सेनापति करटक ने आज्ञा दी है कि तुम शीघ्र ही उनके पास चलो। अन्यथा इस जंगल को छोड़ कर दूर चले जाओ। नहीं तो तुम्हारी बड़ी बुरी दशा हो जायगी। पता नहीं क्रुद्ध होकर स्वामी क्या कर डालेंगे। यह सुनकर सञ्जीवक चला आया। क्योंकि—

आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां ब्राह्मणानामनादरः।
पृथक्शय्या च नारीणामशस्त्रविहितो वधः॥ ८५॥

अन्वयः—नरेन्द्राणाम आज्ञाभङ्गः ब्राह्मणानाम् अनादरः नारीणाम् पृथक् शय्या (एतत्त्रयम्) अशस्त्रविहितः वधः (भवति)॥ ८५॥

नरेन्द्राणाम्=नृपाणाम्, आज्ञाभङ्गः=आदेशस्य अपालनम्, पृथक्शय्या=पृथक्शयनम्, अशस्त्रविहितः=शस्त्रप्रयोगं विनैव कृतः, वधः=मृत्युः। आज्ञाभङ्गादिना नृपादयो विना शस्त्रप्रयोगं म्रियन्ते, मृतकतुल्या भवन्तीत्याशयः॥

राजाओं की आज्ञा का उल्लंघन करना, ब्राह्मणों का अनादर करना और स्त्रियों को अलग बिछौने पर सुलाना—ये बिना हथियार के की गयी हत्या है॥

ततो देशव्यवहारानभिज्ञः संजीवकः सभयमुपसृत्य साष्टाङ्गपातं करटकं प्रणतवान्। तथा चोक्तम्—

देशव्यवहारानभिज्ञः=देशव्यवहारज्ञानरहितः; सभयम्=भययुक्तम्, उपसृत्य=निकटं गत्वा, प्रणतवान्=ननाम॥

इस लिए देशकाल के व्यवहार को जानने वाले सञ्जीवक ने डर से निकट जाकर करटक को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। जैसा कि कहा भी है—

मतिरेव बलाद्गरीयसी यदभावे करिणामियं दशा :
इति घोषयतीव डिण्डिमः करिणो हस्तिपकाहतः क्वणन् ॥८६॥

अन्वयः-बलात् मतिः एव गरीयसी (अस्ति), यदभावे करिणाम् इयम् दशा (भवति), करिणः हस्तिपकाहतः क्वणन् डिण्डिमः इति घोषयति इव ।८६।

बलात्=बलापेक्षया, गरीयसी=अतिशयेन श्रेष्ठा, यदभावे=यस्या मतेरभावे, करिणाम् = गजानाम्, इयं दशा = स्वस्य महाशक्तिसम्पन्नत्वेऽपि स्वल्पबलवतः मानवस्य वशीभावरूपैषा अवस्था । घोषयति = घोषणां करोतीव, डिण्डिमः = वाद्यविशेषः, हस्तिपकाहतः = गजारोहिणा ताडितः, क्वणन् = शब्दायमानः ॥

हाथी की पीठ पर रखे हुए नगाड़ा को पीट-पीटकर महावत द्वारा बजाने पर मानो वह नगाड़ा यह घोषणा करता है कि बल से बुद्धि ही बलवती होती है । उसी के अभाव में हाथियों की ऐसी दशा है (बली होते हुए भी वे मनुष्य की बुद्धि द्वारा ही उसके गुलाम बन जाते हैं) ॥ ८६ ॥

अथ संजीवकः साशङ्कमाह--'सेनापते ! किं मया कर्तव्यम् । तदभिधीयताम् ।' करटको ब्रूते--'वृषभ ! अत्र कानने तिष्ठसि । अस्मद्देवपादारविन्दं प्रणय ।' संजीवको ब्रूते--'तदभयवाचं मे यच्छ । गच्छामि ।' करटको ब्रूते--'शृणु रे बलीवर्द ! अलमनया शङ्कया । यतः--

साशङ्कम् = आशङ्कापूर्वकम्, अभिधीयताम् = कथ्यताम् । अत्र कानने = अस्मिन् वने, तिष्ठसि = निवासं करोषि । अस्मद्देवपादारविन्दम् = अस्माकं नृपतेः चरणकमलम्, प्रणम = प्रणामं कुरु । तावत् = प्रथमम्, अभयवाचम् = अभयवचनम्, मे = मह्यं संजीवकाय, यच्छ = देहि । अलमनया शङ्कया=इदृशीं शङ्कां न कुरु ॥

इसके बाद संजीवक ने डरते कहा—'सेनापति, बताइए; मैं क्या करूँ ?' करटक ने कहा--'बैल, यदि तुम इस जंगल में रहना चाहते हो तो हमारे स्वामी के चरणों में नमस्कार करो ।' सञ्जीवक ने कहा--'तो मुझे अभयदान दीजिए, मैं वहाँ चलता हूँ ।' करटक ने कहा--'अरे बैल, ऐसी शंका न करो । क्योंकि—

प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनहुङ्कुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ॥८७॥

अन्वयः--केशवः अपमानाय चेदिभूभुजे प्रतिवाचम् न अदत्त, केसरी घनध्वनिम् अनुहुङ्कुरुते, गोमायुरुतानि न (अनुहुङ्कुरुते) ॥ ८७ ॥

प्रतिवाचम् = प्रत्युत्तरम्, केशवः = कृष्णः; शपमानाय = गालिप्रदानं कुर्वते, चेदिभूभुजे = शिशुपालाय। अनुहुङ्कुरुते = पश्चाद्हुङ्कृतिं करोति। घनध्वनिम् = मेघशब्दम्, गोमायुरुतानि = शृगालरुदितानि, केसरी = सिंहः। बलवान् बलवत्स्वेव पराक्रमं दर्शयति, न क्षुद्रेष्विति तात्पर्यम्।

भगवान कृष्ण ने गाली देने वाले शिशुपाल की बातों का कोई भी उत्तर नहीं दिया क्योंकि सिंह बादलों का गरजना सुनकर ही गरजता है न कि गीदड़ों की बोली सुनकर। ८७॥

अन्यच्च—तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो
मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
समुच्छ्रितानेव तरून्प्रबाधते
महान्महत्येव करोति विक्रमम्॥८८॥

अन्वयः—प्रभञ्जनः मृदूनि सर्वतः नीचैः प्रणतानि तृणानि न उन्मूलयति, समुच्छ्रितान् तरूनेव प्रबाधते, (यतः) महान् महति एव विक्रमं करोति॥ ८८॥

तृणानि = घासान्, न उन्मूलयति = न उत्पाटयति, प्रभञ्जनः = वात्या (आँधी), मृदूनि = कोमलानि, प्रणतानि = नम्रीभूतानि। समुच्छ्रितान् = अत्युन्नतान्, तरून् = वृक्षान्, प्रबाधते = त्रोटयति वा॥

और—कोमल तथा सभी तरह झुकी हुई घासों को वायु कभी नहीं उखाड़ता। वह तो सिर ऊपर उठाने वाले पेड़ों को ही उखाड़ता है, क्योंकि बड़े लोग बड़ों पर अपने बल का प्रयोग करते हैं॥८८॥

ततस्तौ सञ्जीवकं कियद्दूरे संस्थाप्य पिङ्गलकसमीपं गतौ।

तौ = करटकदमनकौ, कियद्दूरे = स्वल्पदूरे॥

इसके बाद दोनों कुछ दूरी पर ही सञ्जीवक को बिठाकर पिङ्गलक के पास गए।

ततो राज्ञा सादरमवलोकितौ प्रणम्योपविष्टौ। राजाऽऽह—'त्वया स दृष्टः?।' दमनको ब्रूते—'देव, दृष्टः। किन्तु यद्देवेन ज्ञातं तत्तथा। महानेवासौ देवं द्रष्टुमिच्छति। किन्तु महाबलोऽसौ ततः सज्जीभूयोपविश्य दृश्यताम्। शब्दमात्रादेव न भेतव्यम्। तथा चोक्तम्—

सादरम् = आदरपूर्वकम्, अवलोकितौ = दृष्टौ, देवम् = भवन्तम्। सज्जीभूय = सज्जितो भूत्वा, उपविश्य = उपवेशनं कृत्वा। शब्दमात्रात् = केवलं शब्देनैव॥

राजा ने इन दोनों को बड़े आदर से देखा और ये दोनों भी प्रणाम करके बैठ गए। राजा ने कहा—'क्या तुमने उसे देखा।' दमनक ने कहा—'देव, देखा तो अवश्य, किन्तु आप जैसा समझते थे, वह वैसा ही बली है। वह आपका दर्शन करना चाहता है। किन्तु वह बहुत बलवान है। आप तैयार होकर बैठिए और देखिए, केवल उसके शब्द को ही सुनकर डर मत जाइएगा। जैसा कि कहा भी है—

'शब्दमात्रान्न भेतव्यमज्ञात्वा शब्दकारणम्।
शब्दहेतुं परिज्ञाय कुट्टनी गौरवं गता' ॥८९॥

अन्वयः—शब्दकारणम् अज्ञात्वा शब्दमात्रात् न भेतव्यम्, (यतः) शब्दभेदं परिज्ञाय कुट्टिनी गौरवम् गता ॥ ८९ ॥

अज्ञात्वा=अपरिज्ञाय, शब्दकारणम्=शब्दस्य हेतुम्, कुट्टनी=शम्भली, गौरवम्=महत्त्वम् ॥

बिना शब्द का कारण समझे केवल शब्दमात्र से ही नहीं डरना चाहिए। शब्द का कारण जान लेने से ही एक कुटनी लोगों के आदर का पात्र बन गई थी ॥

राजाऽऽह—'कथमेतत्?।' दमनकः कथयति—

राजा ने कहा—'यह कैसे?

कथा ४

अस्ति श्रीपर्वतमध्ये ब्रह्मपुराख्यं नगरम्। तच्छिखरप्रदेशे घण्टाकर्णो नाम राक्षसः प्रतिवसतीति जनप्रवादः श्रूयते। एकदा घण्टामादाय पलायमानः कश्चिच्चौरो व्याघ्रेण व्यापादितः। तत्पाणिपतिता घण्टा वानरैः प्राप्ता। वानरास्तां घण्टामनुक्षणं वादयन्ति। ततो नगरजनैः स मनुष्यः खादितो दृष्टः प्रतिक्षणं घण्टारवश्च श्रूयते। अनन्तरं घण्टाकर्णः कुपितो मनुष्यान् खादति घण्टाञ्च वादयतीत्युक्त्वा सर्वे जना नगरात्पलायिताः ततः करालया नाम कुट्टन्या विमृश्यानवरोऽयं घण्टानादः। तत्किं मर्कटा घण्टां वादयन्तीति स्वयं विज्ञाय राज्ञा विज्ञापितः—'देव, यदि कियद्धनोपक्षयः क्रियते, तदाहमेनं घण्टाकर्णं साधयामि।' ततो राज्ञा तस्यै धनं दत्तम्। कुट्टन्या च मण्डलं कृत्वा तत्र गणेशादिपूजागौरवं दर्शयित्वा स्वयं वानरप्रियफलान्यादाय वनं प्रविश्य फलान्याकीर्णानि। ततो घण्टां परित्यज्य वानराः फलासक्ता

बभूवुः। कुट्टनी च घण्टां गृहीत्वा नगरमागता सर्वजनपूज्याभवत्। अतोऽहं ब्रवीमि–शब्दमात्रान्न भेतव्यम्' इत्यादि। ततः संजीवकमानीय दर्शनं कारितवन्तौ। पश्चात्तत्रैव परमप्रीत्यानिवसति।

ब्रह्मपुराख्यम्= ब्रह्मपुरनामकम्। तच्छिखरप्रदेशे=तस्य शिखरोपरिभागे, जनप्रमादः=लोकोक्तिः। व्यापादितः=हतः। तत्पाणिपतिता–तस्य चौरस्य हस्ताद् भ्रष्टा, अनुक्षणम्=प्रतिक्षणम्। नगरजनैः=नागरिकैः,,खादितः=भक्षितः, घण्टारवः=घण्टायाः ध्वनिः, कुपितः=क्रुद्धः। विमृश्य=विचार्य, अनवसरः =असामयिकः, घण्टानादः=घण्टाध्वनिः। विज्ञापितः=आवेदितः। कियद्धनोपक्षयः=स्वल्पधनव्ययः, साधयामि=वशीकरोमि। तस्यै=कुट्टन्यै, मण्डलम्=तण्डुलकुङ्कुमादिचूर्णेन वृत्ताद्याकारम्, गणेशादिपूजागौरवम्=गणपत्यादिपूजनमहत्त्वम्, दर्शयित्वा=प्रदर्श्य, आकीर्णानि=यत्र तत्र प्रक्षिप्तानि (बिखेर दिया)। फलासक्ताः=फलग्रहणभक्षणतत्पराः। सर्वजनपूज्या=समस्तमानवादरणीया परमप्रीत्या=महत्या प्रसन्नतया॥

श्री पर्वत के बीच में ब्रह्मपुर नाम का नगर है। वहाँ के लोग ऐसा कहते हुए सुने जाते हैं कि उसकी चोटी पर घण्टाकर्ण नाम का राक्षस रहता था। एक बार घण्टा लेकर भागते हुए शिसी चोर को सिंह ने मार डाला। उसके हाथ से गिरा हुआ घण्टा बन्दरों को मिल गया। वे बन्दर घण्टे को हर समय बजाया करते थे। जब नगरवासियों ने सिंह द्वारा खाए गए उस मनुष्य को देखा और हर समय घण्टे की आवाज सूनी तो वे लोग 'घण्टाकर्ण मनुष्यों को खाता है और घण्टा बजाता है' ऐसा कहते हुए वहाँ से भागने लगे। इसके बाद कराला नाम की कुटनी ने विचार किया कि इस घण्टे के असमय बजने में कोई भेद है। उसने यह जान लिया कि घण्टे को बन्दर बजाते हैं और उसने राजा से निवेदन किया कि 'आप कुछ धन खर्च करें तो मैं घण्टाकर्ण को वश में कर सकती हूँ।' राजा ने उसे धन दिया। कुटनी मण्डल बनाकर गणेशादि की पूजा करने का पाखण्ड करके स्वयं बन्दरों को अच्छे लगने वाले फल लेकर जंगल में गई और वहाँ उसने फलों को बिखेर दिया। तब घण्टे को छोड़कर बन्दर फल खाने में लग गए। और कुटनी घण्टे को लेकर नगर में चली आई तथा लोगों से सम्मानित हुई। इसीलिए मैंने कहा है कि–'केवल शब्द से नहीं डरना चाहिए' इत्यादि। इसके बाद संजीवक को वहाँ लाकर उन दोनों ने उसका दर्शन कराया। फिर वह वहीं बड़े प्रेम के साथ रहने लगा।

अथ कदाचित्तस्य सिंहस्य भ्राता स्तब्धकर्णनामा सिंहः समागतः।

तस्यातिथ्यं कृत्वा सिंहमुपवेश्य पिङ्गलकस्तदाहाराय पशुं हन्तुं चलितः। अत्रान्तरे संजीवको वदति- देव, अद्य हतमृगाणां मांसानि क्व ?' राजाह—'दमनककरटकौ जानीतः संजीवको ब्रूते—'ज्ञायतां किमस्ति नास्ति वा ?' सिंहो विमृश्याह—'नास्त्येव तत् ।' संजीवको ब्रूते-'कथमेतावन्मांसं ताभ्यां खादितम् ।' राजाह—'खादितं व्ययितमवधीरितं च । प्रत्यहमेष क्रमः । सञ्जीवको ब्रूते—'कथं श्रीमद्देवपादानामगोचरेणैवं क्रियते ?' राजाह—'मदीयागोचरेणैव क्रियते ।' अथ संजीवको ब्रूते—नैतदुचितम् । तथा चोक्तम्—

सिंहस्य=पिङ्गलकस्य । आतिथ्यम्=अतिथिसत्कारम्, समुपवेश्य=उपवेशनं कारयित्वा (बैठा कर), तदाहाराय=स्वभ्रातृभोजनाय । हतमृगाणाम् =मारितपशूनाम्, क्व=कुत्र, अस्तीति शेषः । विमृश्य=विचार्य । एतावत्= इयत्परिमाणम्, व्ययितम्=व्ययीकृतम्, अवधीरितम्=तिरस्कृतं व्यर्थमेव विनाशितञ्चेत्यर्थः । प्रत्यहम्=प्रतिदिनम, एषः=अयम्, क्रमः=परिपाटी । श्रीमद्देवपादानाम्=भवतामित्यर्थः, अगोचरेण=अविषयेण, भवतोऽविज्ञाप्येत्यर्थः ।

कुछ दिनों के बाद उस सिंह का भाई स्तब्धकर्ण उसके घर आया । उसका आदरसत्कार करके तथा घर में बिठा कर पिंगलक उसके भोजन के लिए शिकार करने चला । इसी समय संजीवकने कहा–स्वामी ! आज मारे गए मृगों का मांस क्या हो गया' राजा ने कहा–'दमनक और करटक जानें ।' सञ्जीवक ने कहा–'तो मालूम कीजिए कि है या नहीं । सिंह ने विचार कर कहा–'वह नहीं ही है ।' संजीवक ने कहा–'क्या उतना मांस वह दोनों खा गए ।' राजा ने कहा–'कुछ खाया, कुछ बाँटा और कुछ इधर-उधर में फेंक दिया । यह तो प्रतिदिन का क्रम है । संजीवक ने कहा–'तो क्या यह सब आप से छिपाकर किया जाता है ।' राजा ने कहा–'हाँ यह सब मेरे अनजाने ही किया जाता है ।' संजीवक ने कहा–'यह तो ठीक नहीं है । कहा भी गया है—

नानिवेद्य प्रकुर्वीत भर्तुः किञ्चिदपि स्वयम् ।
कार्यमापत्प्रतीकारादन्यत्र जगतीपते ! ॥९०॥

अन्वयः—हे जगतीपते ! आपत्प्रतीकारात् अन्यत्र भर्तुः अनिवेद्य स्वयम् किंचित् कार्यम् अपि न कुर्वीत ॥ ९० ॥

अनिवेद्य=निवेदनमकृत्वा, प्रकुर्वीत=कुर्यात्, स्वयम्=आत्मना, आपत्प्रतीकारादन्यत्र=विपत्तिनिवारणविषयं विना, जगतीपते=राजन् ! ॥

स्वामी को बिना बताए स्वयं कुछ भी नहीं करना चाहिए और यदि करना ही हो तो केवल विपत्तियों के दूर करने का उपाय ही करना चाहिए ॥९०॥

अन्यच्च – कमण्डलूपमोऽमात्यस्तनुत्यागो बहुग्रहः ।
नृपते ! किंक्षणो मूर्खो दरिद्रः किंवराटकः ॥ ९१ ॥

अन्वयः—हे नृपते ! तनुत्यागः बहुग्रहः कमण्डलूपमः अमात्यः (भवति), किंक्षणः मूर्खः, (तथा) किंवराटकः दरिद्रः (भवति) ॥ ९१ ॥

कमण्डलूपमः=कमण्डलुतुल्यः, तनुत्यागः=स्वल्पशस्त्यागकर्ता, बहुग्रहः=विपुलग्राही, अमात्यः=प्रशस्तः मन्त्री भवति । किंक्षणः=कुत्सितसमयः—द्वित्रिषु क्षणेषु व्यर्थं गतेष्वपि का क्षतिः इति विचारयिता, मूर्खः=मूढः, किंवराटकः=स्वल्पवराटकोपेक्षकः—कतिपयेषु वराटकेषु (कपर्दकेषु) नष्टेष्वपि का कोषे न्यूनता इत्येवं विचारकर्ता दरिद्रः भवति ॥

और भी—हे राजन् ! मंत्री को कमण्डलु के समान थोड़ा खर्च करनेवाला और बहुत संग्रह करनेवाला होना चाहिए। 'क्षण भर का समय कुछ नहीं' ऐसा सोचनेवाला मूर्ख एवं 'एक कौड़ी की क्या बिसात है' ऐसा सोचनेवाला दरिद्र होता है ॥ ९१ ॥

स ह्यमात्यः सदा श्रेयान् काकिनीं यः प्रवर्धयेत् ।
कोषः कोषवतः प्राणाः प्राणाः प्राणा न भूपतेः ॥ ९२ ॥

अन्वयः—यः काकिनीम् सदा प्रवर्धयेत् सः श्रेयान् अमात्यः (अस्ति) कोषवतः भूपतेः कोषः प्राणाः (सन्ति), प्राणाः प्राणाः न (सन्ति) ॥ ९२ ॥

अमात्यः=मन्त्री, श्रेयान्=उत्तमः, काकिनीम्=कपर्दिकाम् (कौड़ीको), कोषवतः=कोषयुक्त (खजाने वालेका) नृपस्य, कोषा एव प्राणाः सन्ति, न तु प्राणाः प्राणाः सन्ति ॥

एक कौड़ी को भी बढ़ानेवाला ही सबसे कल्याणकारी मन्त्री समझा जाता है। क्योंकि खजाना रखनेवाले राजा का प्राण खजाना ही होता है न कि उसका प्राण-प्राण होता है ॥ ९२ ।

किं चार्थैर्न कुलाचारैः सेव्यतामेति पूरुषः ।
धनहीनः स्वपत्न्यापि त्यज्यते किं पुनः परैः ॥ ९३ ॥

अन्वयः—किं च पूरुषः अर्थैः न कुलाचारैः सेव्यताम् एति, धनहीनः पुरुषः स्वपत्न्या अपि त्यज्यते, पुनः परैः किम् ? ॥ ९३ ॥

अर्थैः=धनैः, कुलाचारैः=कुलाचरणैः, सेव्यतामेति=सेवनीयो भवति। स्वपत्न्या=स्वस्त्रिया, परैः=अन्यैः, किम्=किं वक्तव्यम्।

धन के अतिरिक्त अन्य कुलाचारों से मनुष्य स्वामित्व नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि धनहीन तो अपनी पत्नी के द्वारा भी छोड़ दिया जाता है फिर दूसरों की बात ही क्या? ॥ ९३ ॥

एतच्च राज्ञः प्रधानं दूषणम्—

यह राजा का प्रधान दोष है—

अतिव्ययोऽनवेक्षा च तथार्जनमधर्मतः।
मोक्षणं दूरसंस्थानां कोषव्यसनमुच्यते ॥ ९४ ॥

अन्वयः—अतिव्ययः, च अनवेक्षा तथा अधर्मतः (धनस्य) अर्जनम्, दूरसंस्थानाम् मोक्षणम् (इत्येतत्सर्वम्) कोषव्यसनम् उच्यते ॥ ९४ ॥

अतिव्ययः=अधिकव्ययः, अनवेक्षा=निरीक्षणाभावः, अर्जनम्=उपार्जनम्, मोक्षणम्=त्यागः, कोषव्यसनम्=कोषदोषः कोषहानिकारकत्वादित्यर्थः, उच्यते=कथ्यते ॥

अधिक खर्च करना, देखभाल न रखना, अधर्म से धन ले आना, दूर रखना और छोड़ देना, ये खजाने के संकट कहे जाते हैं ॥ ९४ ॥

यतः—क्षिप्रमायमनालोच्य व्ययमानः स्ववाञ्छया।
परिक्षीयत एवासौ धनी वैश्रवणोपमः ॥ ९५ ॥

अन्वयः—आयम् अनालोच्य स्ववाञ्छया व्ययमानः वैश्रवणोपमः (अपि) असौ धनी क्षिप्रम् परीक्षीयते एव ॥ ९५ ॥

क्षिप्रम्=शीघ्रम्, आयम्=आगतधनम्, अनालोच्य=अविचार्य, व्ययमानः=व्ययं कुर्वन्, परिक्षीयते=परितः क्षीणो भवति, वैश्रवणोपम=कुबेरतुल्यः।

क्योंकि जो मंत्री तत्काल होनेवाली आय का विचार किए बिना ही इच्छानुसार धन खर्च करता है, वह कुबेर—जैसा धनी होने पर भी धीरे-धीरे सम्पत्ति से रहित हो जाता ॥ ९५ ॥

स्तब्धकर्णो ब्रूते—'शृणु भ्रातः, चिराश्रितावेतौ दमनककरटकौ संधिविग्रहकार्याधिकारिणौ च कदाचिदर्थाधिकारे न नियोक्तव्यौ अपरञ्च नियोगप्रस्तावे यन्मया श्रुतं तत्कथ्यते।

ब्रूते=आह, सन्धिविग्रहकार्याधिकारिणौ=सन्धिविग्रहकार्ये प्राप्ताधिकारौ, अर्थाधिकारे=द्रव्याधिकारे, नियोक्तव्यौ=नियोजनीयौ। नियोगप्रस्तावे=नियुक्तिप्रसङ्गः ॥

स्तब्धकर्ण ने कहा—सुनो भाई, ये दमनक और करटक दोनों ही पुराने सेवक हैं और उन्हें संधि या विग्रह करने का अधिकार दिया गया है, अतः इन्हें अर्थ (धन) का अधिकार नहीं देना चाहिए। और नियुक्ति के विषय में जैसा मैंने सुना है, वैसा कह रहा हूँ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो बन्धुर्नाधिकारे प्रशस्यते।
ब्राह्मणः सिद्धमप्यर्थं कृच्छ्रेणापि न यच्छति ॥ ९६ ॥

अन्वयः—ब्राह्मणः क्षत्रियः बन्धुः अधिकारे न प्रशस्यते, ब्राह्मणः सिद्धम् अपि अर्थम् कृच्छ्रेण अपि न यच्छति ॥ ९६ ॥

अधिकारे=प्रजातः करादानाधिकारविषये, प्रशस्यते=योग्यो भवति, सिद्धम्=लब्धम्, अर्थम्=धनम्, कृच्छ्रेण=कष्टेन, यच्छति=ददाति ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा अपने बन्धुओं को अर्थ के अधिकारी के रूप में नियुक्त करना ठीक नहीं। क्योंकि ब्राह्मण तैयार धन को भी कठिनाइयों के समय नहीं देता ॥ ९६ ॥

नियुक्तः क्षत्रियो द्रव्ये खड्गं दर्शयते ध्रुवम्।
सर्वस्वं ग्रसते बन्धुराक्रम्य ज्ञातिभावतः ॥ ९७ ॥

अन्वयः—(अधिकारे नियुक्तः क्षत्रियः ध्रुवम् खड्गम् दर्शयते, बन्धुः ज्ञातिभावतः आक्रम्य सर्वस्वम् ग्रसते ॥ ९७ ॥

(प्रजातः करादानाधिकारे) नियुक्तः=स्थापितः, क्षत्रियः=बाहुजः, खड्गं०-निश्चयेन खड्गं दर्शयति, अवश्यं युध्यति इत्यर्थः। सर्वस्वम्=सर्वसम्पदम्, ग्रसते=गिरति, गृह्णातीति यावत्, बन्धुः=भ्रात्रादिबान्धवः, ज्ञातिभावतः=जातित्वात् ॥

यदि क्षत्रिय को अर्थ का अधिकार दे दिया जाय तो वह बात-बात में तलवार ही उठाएगा और भाई-बधु तो मौका पाकर उसपर आक्रमण करके सभी कुछ हड़प जायेंगे ॥

अपराधेऽपि निःशङ्को नियोगी चिरसेवकः।
स स्वामिनमवज्ञाय चरेच्च निरवग्रहः ॥ ९८ ॥

अन्वयः—नियोगी चिरसेवकः अपराधे अपि निःशङ्कः (भवति) सः स्वामिनम् अवज्ञाय निरवग्रहः चरेत् ॥ ९८ ॥

अपराधे=दोषे, निश्शङ्कः=निर्भयः, नियोगी=प्रजातः करादाने नियुक्तः, चिरसेवकः=पुरातनभृत्यः, अवज्ञाय=तिरस्कृत्य, निरवग्रहः=बन्धनहीनः, स्वच्छन्द इति भावः ॥

पुराना सेवक अपराध करने पर भी निडर भाव से स्वामी का अपमान करता हुआ मनमानी आचरण करने लगता है ॥ ९८ ॥

उपकर्ताधिकारस्थः स्वापराधं न मन्यते ।
उपकारं ध्वजीकृत्य सर्वमेवावलुम्पति ॥ ९९ ॥

अन्वयः—अधिकारस्थः उपकर्ता स्वापराधम् न मन्यते । उपकारम् ध्वजीकृत्य सर्व एव अवलुम्पति ॥ ९९ ॥

उपकर्ता=उपकारी, अधिकारस्थः=प्रजाभ्यः करग्रहणाधिकारे नियुक्तः स्वापराधम्=स्वदोषम्, न मन्यते=स्वीकरोति । ध्वजीकृत्य,=सर्वोपरि कृत्वा अवलुम्पति=नष्टं करोति, आदत्ते वा ॥

स्वामी का उपकार करनेवाला सेवक किसी अधिकार पर स्थित होकर अपने अपराधों को नहीं समझता और उपकार का झंडा फहराता हुआ सभी कुछ निगल जाता है ॥ ९९ ॥

उपांशुक्रीडितोऽमात्यः स्वयं राजायते यतः ।
अवज्ञा क्रियते तेन सदा परिचयाद्ध्रुवम् ॥ १०० ॥

अन्वयः—उपांशुक्रीडितः अमात्यः यतः स्वयम् राजायते, तेन सदा परिचयात् ध्रुवम् अवज्ञा क्रियते ॥ १०० ॥

उपांशु=एकान्ते, क्रीडितः=कृतविलासः, राजायते=राजेवाचरति ॥

राजा के साथ खेलनेवाला सेवक मंत्री बनकर यदि धन का भी अधिकार पा जाता है तो वह अपने को राजा ही मान बैठता है और पहले के परिचय के नाते पद-पद पर राजा का अपमान करता चलता है ॥ १०० ॥

अन्तर्दुष्टः क्षमायुक्तः सर्वानर्थकरः किल ।
शकुनिः शकटारश्च दृष्टान्तावत्र भूपते ॥ १०१ ॥

अन्वयः—अन्तर्दुष्टः (बहिः) क्षमायुक्तः (अमात्यः) सर्वानर्थकरः (भवति) किल । भूपते ! अत्र शकुनिः च शकटारः दृष्टान्तौ (स्तः) ॥ १०१ ॥

अन्तर्दुष्टः=मनसि दुर्जनः, क्षमायुक्तः=क्षमासहितः (बहिरिति शेषः), सर्वानर्थकरः=सकलानर्थकारकः, किल=इति प्रसिद्धौ । शकुनिः=धृतराष्ट्रस्य श्यालः, शकटारः=नन्दनृपतेस्तन्नामकोऽमात्यः, दृष्टान्तौ=उदाहरणस्वरूपौ ॥

जो मन का खोटा किन्तु ऊपर से क्षमाशील होता है वह सभी प्रकार अनर्थ कर सकता है । राजन् ! इस विषय में शकुनि (दुर्योधन का मामा) और शकटार (नंद का मंत्री) प्रमाण हैं ॥ १०१ ॥

सदामात्यो न साध्यः स्यात्समृद्धः सर्व एव हि ।
सिद्धानामयमादेशः ऋद्धिश्चित्तविकारिणी ॥ १०२ ॥

अन्वयः—समृद्धः सर्व एव अमात्यः सदा साध्यः न हि (भवति), ऋद्धिश्चित्तविकारिणी (भवति), अयम् आदेशः सिद्धानाम् (अस्ति) ॥ १०२ ॥

साध्यः=वशीकरणयोग्यः, समृद्धः=समृद्धियुक्तः, सिद्धानाम्—सिद्धपुरुषाणाम्; आदेशः=आज्ञा, ऋद्धिः=समृद्धिः, उन्नतिरिति भावः चित्तविकारिणी =मनोविकारिणी ।

वैभवशाली मंत्री कभी भी वश में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह अपने ही को सब कुछ समझता है । इसीलिए नीतिज्ञ पुरुषों का यह कहना है कि धन तो अवश्य ही मन में विकार उत्पन्न करता है ॥ १०२ ॥

प्राप्तार्थग्रहणं द्रव्यपरीवर्तोऽनुरोधनम् ।
उपेक्षा बुद्धिहीनत्वं भोगोऽमात्यस्य दूषणम् ॥ १०३ ॥

अन्वयः—प्राप्तार्थग्रहणम्, द्रव्यपरीवर्तः अनुरोधनम् उपेक्षा बुद्धिहीनत्वम् भोगः (इत्येतत्सर्वम्) अमात्यस्य दूषणम् (अस्ति) ॥ १०३ ॥

प्राप्तार्थग्रहणम्=लब्धधनस्य स्वयमादानम्, द्रव्यपरीवर्तः=बहुमूल्यं वस्तु स्वयमादाय तत्स्थाने स्वल्पमूल्यवतो वस्तुनः स्थापनम्, अनुरोधनम्=स्वाभिलषितसिद्धयै राजानं प्रत्याग्रहः, उपेक्षा=नृपादेशस्य नृपकार्यस्य वा उपेक्षणम् बुद्धिहीनत्वम्=मूढत्वम्, भोगः=विषयासक्तिः राजद्रव्यस्य स्वकार्ये उपयोगो वा, इदं सर्वम् अमात्यस्य=मन्त्रिणः, दूषणम्=दोषः, अस्तीति शेषः ॥

प्राप्त धन को ले लेना, कोष के धन को व्याज पर देना, किसी बात के लिए राजा पर दबाव डालना, उसके प्रति उपेक्षा का भाव रखना और भोगबिलास में लगा रहना—ये मन्त्री के दोष हैं ॥ १०३ ॥

नियोग्यर्थग्रहोपायो राज्ञा नित्यपरीक्षणम् ।
प्रतिपत्तिप्रदानं च तथा कर्मविपर्ययः ॥ १०४ ॥

अन्वयः—राज्ञा नित्यम् परीक्षणम्, च प्रतिपत्तिप्रदानम् तथा कर्मविपर्ययः (एतत् त्रयम्) नियोग्यर्थग्रहोपायः (अस्ति) ॥ १०४ ॥

नियोग्यर्थग्रहोपायः—नियोगिनः=नियुक्तादधिकारिपुरुषात्, अर्थस्य=द्रव्यस्य, ग्रहः=ग्रहणम् तस्य उपायः=यत्नः (नियुक्त पुरुषोंसे धन लेनेका उपाय) राज्ञा॰—अधिकारिपुरुषस्य कार्यपरीक्षा, प्रतिपत्तिप्रदानम्=पुरस्कारादिप्रदानस्य वेतनवृद्धयादेर्वा विश्वासदानम्, कर्मविपर्ययः=अधिकारिणां कार्यस्य परिवर्तनम्, तत्क्रियमाणकार्यादन्यकार्ये नियुक्तिः ॥

राजसेवकों से धन ग्रहण करने का यही उपाय है कि राजा अपने सभी

विभागों की देख-रेख में लगा रहे, विभागीय कर्मचारियों को धन देने का विश्वास देता रहे तथा उनके काम को बदलता रहे ।। १०४ ।।

निपीडिता वमन्त्युच्चैरन्तःसारं महीपतेः ।
दुष्टव्रणा इव प्रायो भवन्ति हि नियोगिनः ।। १०५ ।।

अन्वयः—निपीडिताः (नियोगिनः) महीपतेः अन्तःसारम् उच्चैः वमन्ति हि नियोगिनः प्रायः दुष्टव्रणा इव भवन्ति ।। १०५ ।।

निपीडिताः=दण्डादिना पीडिताः, अन्तःसारम्=गुप्तशक्तिम्, उच्चैः वमन्ति=स्पष्टतया प्रकटयन्ति । दुष्टव्रणाः=महाविस्फोटाः (बड़े घाव), नियोगिनः=राज्ञा अधिकारे नियुक्ताः पुरुषाः । यथा महाव्रणाः पीडिताः पूयमुच्चैरुद्गिरन्ति, तथैव कठिनदण्डादिना पीडिता राजाधिकारिणोऽपि राज्ञो गुप्तावार्ताः प्रकटी कुर्वन्ति ।।

हे राजन्, राज्यकार्य में लगे हुए बहुत से ऐसे सेवक होते हैं जो दबाव पड़ने पर राजा के सभी भेदों को साफ-साफ उसी प्रकार मुँह के बाहर कर देते हैं जैसे पका हुआ फोड़ा दबाने से बह जाता है ।। १०५ ।।

मुहुर्नियोगिनो बाध्या वसुधारा महीपते ।
सकृत्किं पीडितं स्नानवस्त्रं मुञ्चेद्धृतं पयः ।। १०६ ।।

अन्वयः—हे महीपते ! वसुधारा नियोगिनः मुहुः बाध्याः, सकृत् पीडितम् स्नानवस्त्रम् किम् धृतम् पयः मुञ्चति ।। १०६ ।।

मुहुः=पौनः पुन्येन, नियोगिनः=अधिकृता जनाः; बाध्याः=धनदानार्थं पीडनीयाः । सकृत्=एकवारम्, पीडितम्=मर्दितम् (निचोड़ा गया), स्नानवस्त्रम्=स्नानान्ते आर्द्रीभूतं वसनम्, मुञ्चेत्=त्यजेत्, धृतम्=स्वस्मिन् गृहीतम्, (द्रुतमिति पाठे शीघ्रमित्यर्थः), पयः=जलम् ।।

हे राजन्, बार-बार दबाव देने से ही कर्मचारी राजा को धन देता रहता है । इसलिए उसे बराबर दबाते रहना चाहिए । क्या पानी में भींगा हुआ कपड़ा एक ही बार निचोडने से सारा पानी छोड़ देता है ? ।। १०६ ।।

एतत्सर्वं यथावसरं ज्ञात्वा व्यवहर्तव्यम् ।' सिंहो ब्रूते—'अस्ति तावदेवम् । किंत्वेतौ सर्वथा न मम वचनकारिणौ ।' स्तब्धकर्णो ब्रूते—'एतत्सर्वमनुचितं सर्वथा । यतः—

यथावसरम्=अवसरानुकूलम्, व्यवहर्तव्यम्=व्यवहारः कर्तव्यः; वचनकारिणौ=आज्ञापालकौ ।।

यह सब समझ कर अवसर के अनुकूल ही काम करना चाहिए। सिंह ने कहा—यह तो ठीक ही है। किन्तु यह दोनों मेरी बात ही नहीं मानते। स्तब्धकर्ण ने कहा—यह सब तो बहुत अनुचित है। क्योंकि--

आज्ञाभङ्गकरान् राजा न क्षमेत्स्वसुतानपि।
विशेषः को नु राज्ञश्च राज्ञश्चित्रगतस्य च॥ १०७॥

अन्वयः--राजा आज्ञाभङ्गकरान् स्वसुतान् अपि न क्षमेत् (अन्यथा) राज्ञः चित्रगतस्य राज्ञः च कः विशेषः नु॥ १०७॥

आज्ञाभङ्गकरान्=आदेशोल्लङ्घिनः, क्षमेत्=क्षमां कुर्यात्। विशेषः=भेदः राज्ञः=सिंहासनारूढनृपस्य, राज्ञश्चित्र०=चित्रस्थस्य नृपस्य। यदि राजा निर्देशोलङ्घिनः भृत्यान् न दण्डयति, तदा स चित्रगतनृप इव व्यर्थ इति भावः॥

राजा को चाहिए कि वह अपनी आज्ञा न माननेवाले अपने लड़कों को भी न क्षमा करे। जो राजा ऐसा नहीं करता, उसमें तथा चित्रमें लिखे हुए राजा में अन्तर ही क्या है ?॥ १०७॥

स्तब्धस्य नश्यति यशो विषमस्य मैत्री
नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः।
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं
राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य॥ १०८॥

अन्वयः--स्तब्धस्य (पुरुषस्य; इदं पादत्रयेऽपि योज्यम्) यशः, विषमस्य मैत्री, नष्टेन्द्रियस्य कुलम्, अर्थपरस्य धर्मः, व्यसनिनः विद्याफलम्, कृपणस्य सौख्यम् (च) प्रमत्तसचिवस्य राज्यम् नश्यति॥ १०८॥

स्तब्धस्य=जडस्य, विषमस्य=अस्थिरप्रकृतेः, मैत्री=मित्रता, नष्टेन्द्रियस्य=अजितेन्द्रियस्य, कुलम्=वंशः, अर्थपरस्य=धनसंग्रहमात्रतत्परस्य, व्यसनिनः=मद्यद्यूताद्यासक्तचेतसः, प्रमत्तसचिवस्य=प्रमादवदमात्यस्य। नश्यतीत्यस्य सर्वत्र सम्बन्धो बोध्यः॥

आलसी व्यक्ति का यश, अविश्वासी की मित्रता, इन्द्रियों को वश में न रखनेवाले की वंशमर्यादा, धन के लोभी का धर्म, व्यसनी व्यक्ति की विद्या, कंजूस का सुख और उन्मत्त मंत्रीवाले राजा का राज्य अवश्य नष्ट हो जाता है॥ १०८॥

अपरं च—तस्करेभ्यो नियुक्तेभ्यः शत्रुभ्यो नृपवल्लभात्।
नृपतिर्निजलोभाच्च प्रजा रक्षेत्पितेव हि॥ १०९॥

अन्वयः—नृपतिः, तस्करेभ्यः नियुक्तेभ्यः शत्रुभ्यः नृपवल्लभात् च निज-लोभात् प्रजाः पिता इव रक्षेत् हि ।। १०९ ।।

तस्करेभ्यः = चौरेभ्यः; नियुक्तेभ्यः = राज्याधिकृतेभ्यः, नृपवल्लभात् = राज्ञः अतिस्नेहप्राप्ताज्जनात्, निजलोभात् = आत्मलोभात् ।।

और भी—चोरों, कर्मचारियों, शत्रुओं, अपने प्रियलोगों तथा अपनी लालच से राजाको पिता के समान सर्वदा प्रजा की रक्षा करनी चाहिए ।। १०९ ।।

भ्रातः ! सर्वथास्मद्वचनं क्रियताम् । व्यवहारोऽप्यस्माभिः कृत एव । अयं संजीवकः सस्यभक्षकोऽर्थाधिकारे नियुज्यताम् ।' एतद्वच-नात्तथानुष्ठिते सति तदारभ्य पिङ्गलकसंजीवकयोः सर्वबन्धुपरित्या-गेन महता स्नेहेन कालोऽतिवर्तते । ततोऽनुजीविनामप्याहारदाने शैथिल्यदर्शनाद्दमनककरटकावन्योन्यं चिन्तयतः । तदाह-दमनकः कर-टकम्-- मित्र, किं कर्तव्यम् । आत्मकृतोऽयं दोषः । स्वयं कृतेऽपि दोषे परिदेवनमप्यनुचितम् । तथा चोक्तम्--

व्यवहारः = निर्णयः, सस्यभक्षकः = तृणभक्षणकर्ता, अर्थाधिकारे = द्रव्याधि-कारे, नियुज्यताम् = नियुक्तः क्रियताम् तथाऽनुष्ठिते सति = सञ्जीवके धनाधि-कारे नियुक्ते सति, सर्वबन्धुपरित्यागेन = समस्तपरिवारत्यागेन, अतिवर्तते = गच्छति । अनुजीविनाम् = भृत्यानाम्, शैथिल्यदर्शनात् = अनादरावलोकनात्, अन्योन्यम् = परस्परम्, परिदेवनम् = परितापः, सन्ताप इत्यर्थः ।।

भाई, आप सभी प्रकार हमारे कहने के अनुसार ही काम करें । इस घास खाने वाले संजीवक को ही 'धन' का अधिकार प्रदान करें । स्तब्धकर्ण के कहने के अनुसार संजीवक के कोषाध्यक्ष बना देने के समय से ही पिंगलक और संजीवक दोनों ही अपने बन्धुओं द्वारा छोड़ दिए जाने पर भी बड़े प्रेम के साथ अपना समय बिताने लगे । इसके पश्चात् सेवकों के भोजन देने में भी उपेक्षा देखकर दमनक और करटक ने आपस में विचार किया । तब दमनक ने कर-टक से कहा—'मित्र ! क्या करना चाहिए । यह तो अपना ही किया हुआ पाप है । स्वयं किए हुए पापों पर पश्चात्ताप भी करना अनुचित है । जैसा कि कहा भी गया है--

स्वर्णरेखामहं स्पृष्ट्वा बद्ध्वात्मानं च दूतिका ।
आदित्सुश्च मणिं साधुः स्वदोषाद् दुःखिता इमे ।। ११० ।।

अन्वयः—अहम् स्वर्णरेखाम् स्पृष्ट्वा, च दूतिका आत्मानम् बद्ध्वा, च साधुः मणिम् आदित्सुः—इमे स्वदोषात् दुःखिताः (अभूवन्) ।।११०।।

आदित्सुः=आदातुमिच्छुः, स्वदोषात्=स्वकृतापराधाद्धेतोः ॥

मैं सोने की रेखा छूकर, दूती अपने आप को बाँध कर तथा साधु रत्न लेने की अभिलाषा करके–ये तीनों ही अपने ही दोषों से दुखी हुए ॥११० ॥

करटको ब्रूते—'कथमेतत् ।' दमनकः कथयति—

करटक ने कहा—यह कैसे ?' दमनक ने कहा—

कथा ५

अस्ति काञ्चनपुरनाम्नि नगरे वीरविक्रमो राजा । तस्य धर्माधिकारिणा कश्चिन्नापितो वध्यभूमिं नीयमानः कंदर्पकेतुनाम्ना परिव्राजकेन साधुद्वितीयकेन 'नायं हन्तव्य' इत्युक्त्वा वस्त्राञ्चले धृतः । राजपुरुषा ऊचुः—'किमिति नायं वध्यः ।' स आह—'श्रूयताम् ।' 'स्वर्णरेखामहं स्पृष्ट्वा' इत्यादि पठति । त आहुः—'कथमेतत् ।' परिव्राजकः कथयति—'अहं सिंहलद्वीपस्य भूपतेर्जीमूतकेतोः पुत्रः कंदर्पकेतुर्नाम । एकदा केलिकाननावस्थितेन मया पोतवणिङ्मुखाच्छ्रुतं 'यदत्र समुद्रमध्ये चतुर्दश्यामाविर्भूतकल्पतरुतले रत्नावलीकिरणकर्बुरपर्यङ्कस्थिता सर्वालंकारभूषिता लक्ष्मीरिव वीणां वादयन्ती कन्या काचिद् दृश्यते' इति । ततोऽहं पोतवणिजमादाय पोतमारुह्य तत्र गतः । अनन्तरं तत्र गत्वा पर्यङ्केऽर्धमग्ना तथैव साऽवलोकिता । ततस्तल्लावण्यगुणाकृष्टेन मयापि तत्पश्चाज्झम्पो दत्तः । तदनन्तरं कनकपत्तनं प्राप्य सुवर्णप्रासादे तथैव पर्यङ्के स्थिता विद्याधरीभिरुपास्यमाना मयालोकिता । तयाप्यहं दूरादेव दृष्ट्वा सखीं प्रस्थाप्य सादरं संभाषितः । तत्सख्या च मया पृष्टया समाख्यातम्—'एषा कंदर्पकेलिनाम्नो विद्याधरचक्रवर्तिनः पुत्री रत्नमञ्जरी नाम प्रतिज्ञापिता विद्यते । यः कनकपत्तनं स्वचक्षुषागत्य पश्यति, स एव पितुरगोचरोऽपि मां परिणेष्यतीति मनसः संकल्पः । तदेनां गान्धर्वविवाहेन परिणयतु भवान् ।'

धर्माधिकारिणा=न्यायाधीशेन, नापितः=क्षौरकर्ता (नाई), परिव्राजकेन=संन्यासिना, वस्त्राञ्चले=स्ववस्त्रप्रान्ते, केलिकाननावस्थितेन=क्रीडोद्यानस्थेन, पोतवणिङ्मुखात्=जलयानव्यापारिमुखात् (समुद्री व्यापारीके मुखसे), आविर्भूतकल्पतरुतले=प्रकटितकल्पवृक्षस्याधोभागे, रत्नावलीकर्बुरितपर्यङ्के=रत्न-

समूहघटिततया चित्रीकृतशय्यायाम् । पोतम् = जलयानम् । तथैव-सर्वालङ्कार-भूषिता लक्ष्मीरिव एव, सा = कन्या, अवलोकिता = दृष्टा । तल्लावण्यगुणाकृष्टेन = तस्याः = कन्यायाः, लावण्यम् = सौन्दर्यम् एव गुणः-रज्जुः, तेनाकृष्टः-कृताकृष्टिः तेन, तस्याः सौन्दर्यवशीभूतेनेत्यर्थः । झम्पो दत्तः = जले कूर्दितम् । कनकपत्तनम् = स्वर्णनगरम्, तथैव-अर्द्धसुप्तैव, विद्याधरीभिः-विद्याधरस्त्रीभिः, उपास्यमाना = सेव्यमाना । प्रस्थाप्य = सम्प्रेष्य, सम्भाषितः-उक्तः । समाख्यातम् = कथितम् । प्रतिज्ञापिता = कृतप्रतिज्ञा, स्वचक्षुषा = स्वनेत्रेण, पितुः = जनकस्य, अगोचरः = अप्रत्यक्षः, परिणेष्यति = मया सह विवाहं करिष्यति । गान्धर्वविवाहेन = कन्यावरयोरेव परस्परं प्रीत्या जायमानेन विवाहेन, परिणयतु = विवाहं करोतु ॥

कञ्चनपुर नाम के नगर में वीरविक्रम नाम का एक राजा था । 'उसके धर्माधिकारी एक नाई को पकड़ कर फाँसी देने के स्थान पर ले जा रहे थे कि उसी समय एक साधु के साथ कंदर्पकेतु नाम के एक संन्यासी ने उसे अपने वस्त्रों में छिपाते हुए कहा कि 'यह मारने योग्य नहीं है ।' तब सिपाहियों ने कहा—'क्यों नहीं मारने योग्य है ।' उसने कहा—सुनो, और 'स्वर्णरेखा को छूकर मैं' आदि पढ़ने लगा । उन्होंने कहा—यह कैसे ? सन्यासी ने कहा—'मैं 'सिंहद्वीपके राजा जीमूतकेतु का पुत्र कन्दर्पकेतु हूँ । एक बार मैं अपने विहार-उपवन में बैठा हुआ था कि उसी समय मैंने नाव द्वारा व्यापार करनेवाले एक व्यवसायी से सुना कि इस समुद्र के बीच में चतुर्दशी के दिन दिखाई पड़ने वाले कल्पवृक्ष के नीचे रत्नों की किरणों से जगमगाते हुए पलंग पर बैठी हुई, सभी गहनों से सुशोभित एवं लक्ष्मी के समान, वीणा बजाती हुई कोई कन्या दिखाई पड़ती है । तब मैं उस नाविक व्यापारी को साथ लेकर नाव द्वारा वहाँ गया । वहाँ जाने पर मैंने पलंग पर आधी लेटी हुइ उसी प्रकार की कन्या देखी । उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर मैं भी समुद्र में कूद पड़ा । इसके पश्चात् मैंने सोने की नगरी में पहुँच कर सोने के महल में उसी प्रकार पलंग पर बैठी हुई तथा विद्याधरियों द्वारा सेवित उस कन्या को देखा । उसने भी मुझे दूर ही से देख कर सखी भेज उसके द्वारा मुझसे बड़े आदर के साथ बातचीत की । मैंने उसकी सखी से पूछा तो उसने बताया कि वह विद्याधरों के चक्रवर्ती राजा कन्दर्पकेलि की पुत्री है । इसका नाम रत्नप्रभा है और इसने प्रतिज्ञा करके यहाँ निवास किया है । इसके मन का संकल्प है कि जो पुरुष इस सोने की नगरी में आकर स्वयम् अपनी आँखों से उसे देखेगा वही पिता की आज्ञा न होते हुए भी मेरे साथ विवाह करेगा । इसलिए आप इसके साथ गन्धर्व विवाह करें ।

अथ तत्र वृत्ते गान्धर्वविवाहे तया सह रममाणस्तत्राहं तिष्ठामि। तत एकदा रहसि तयोक्तम्—'स्वामिन्, स्वेच्छया सर्वमिदमुपभोक्तव्यम्। एषा चित्रगता स्वर्णरेखा नाम विद्याधरी न कदाचित् स्प्रष्टव्या। पश्चादुपजातकौतुकेन मया स्वर्णरेखा स्वहस्तेन स्पृष्टा। तया चित्रगतयाप्यहं चरणपद्मेन ताडित आगत्य स्वराष्ट्रे पतितः। अथ दुःखितोऽहं परिव्रजितः पृथिवीं परिभ्राम्यन्निमां नगरीमनुप्राप्तः। अत्र चातिक्रान्ते दिवसे गोपगृहे सुप्तः सन्नपश्यम्।' प्रदोषसमये पशूनां पालनं कृत्वा स्वगेहमागतो गोपः स्ववधूं दूत्या सह किमपि मन्त्रयन्तीमपश्यत्। ततस्तां गोपीं ताडयित्वा स्तम्भे बद्ध्वा सुप्तः। ततोऽर्धरात्रे एतस्य नापितस्य वधूर्दूती पुनस्तां गोपीमुपेत्याब्रवीत्—'तव विरहानलदग्धोऽसौ स्मरशरजर्जरितो मुमूर्षुरिव वर्तते। तथा चोक्तम्—

वृत्ते=संजाते। रहसि=एकान्ते। चित्रगता=चित्रस्था, स्वर्णरेखा=तन्नाम्नी, स्प्रष्टव्या=स्पर्शनीया। उपजातकौतुकेन=एतस्याः स्पर्शनेन किं भविष्यति इत्येवमुत्पन्नकौतूहलेन, चरणपद्मेन=पादपङ्कजेन, स्वराष्ट्रे=आत्मनो राज्ये। दुःखार्तः=तद्वियोगकष्टेन पीडितः, परिव्रजितः=गृहीतसंन्यासः। अतिक्रान्ते=अतीते, दिवसे=दिने, प्रदोषसमये=सायंकाले, पशूनाम्=गवादिजन्तूनाम्, पालनं कृत्वा=तेभ्यो यवसादि दत्वा, मन्त्रयन्तीम्=परामर्शं कुर्वन्तीम् (सलाह करती हुई)। तव=गोप्याः, विरहानलदग्धः=वियोगाग्निज्वलितः, स्मरशरजर्जरितः=कामबाणेन जर्जरीभूतः, मुमुर्षुरिव=आसन्नमृत्युरिव॥

इसके बाद गान्धर्व विवाह करके मैं उसके साथ रमण करता हुआ वहीं उसी के साथ रहने लगा। एक बार उसने एकान्त में मुझसे कहा कि—स्वामी आप अपनी इच्छा के अनुसार इन सभी वस्तुओं का उपयोग करें' किन्तु इस चित्र में बनी हुई स्वर्णरेखा नाम की विद्याधरी को कभी मत छूवें। इससे मुझे कुछ कुतूहल हुआ और मैंने उसे छू लिया। उस चित्र में बनी हुई स्वर्णरेखा ने अपने चरणकमलों से इस प्रकार झटका दिया कि मैं आकर अपने राज्य में गिरा। मैंने दुःखी होकर संन्यास ले लिया और पृथ्वी पर घूमता हुआ अब मैं इस नगरी में पहुँचा हूँ। यहाँ कल एक ग्वाले के घर सोते समय मैंने देखा कि ग्वाला पशुओं को चराकर सायंकाल अपने घर आया और उसने अपनी पत्नी को किसी दूती के साथ बातचीत करते हुए देखा। तब वह पत्नी को मार कर

तथा उसे खंभे में बाँध कर सो गया। इसके बाद आधी रात के समय उस नाई की दूती स्त्री फिर उस अहीरिन के पास आई और बोली–'तुम्हारे विरह की अग्नि में जलता हुआ वह कामबाणों से घायल होकर मरा हुआ-सा पड़ा है। जैसा कि कहा भी है—

रजनीचरनाथेन खण्डिते तिमिरे निशि।
यूनां मनांसि विव्याध दृष्ट्वा दृष्ट्वा मनोभवः ॥१११॥

अन्वयः—रजनीचरनाथेन निशि तिमिरे खण्डिते (सति) मनोभवः यूनाम् मनांसि दृष्ट्वा दृष्ट्वा विव्याध ॥ १११ ॥

रजनीचरनाथेन=चन्द्रेण, खण्डिते०–रात्रौ अन्धकारे दूरीकृते, यूनाम्=युवकानाम्, विव्याध=विद्धवान् ॥

चन्द्रमा ने उदय होकर रात्रि के अन्धकार को दूर कर दिया जिससे अब कामदेव देख-देख कर युवकों के मन को वेध रहा है ॥ १११ ॥

तस्य तादृशीमवस्थामवलोक्य परिक्लिष्टमनास्त्वामनुवर्तितुमागता। तदहमत्रात्मानं बद्ध्वा तिष्ठामि। त्वं तत्र गत्वा तं सन्तोष्य सत्वरमागमिष्यसि। तथानुष्ठिते सति स गोपः प्रबुद्धोऽवदत्—इदानीं त्वां पापिष्ठां जारान्तिकं नयामि। ततो यदासौ न किंचिदपि ब्रूते तदा क्रुद्धो गोपः 'दर्पान्मम वचसि प्रत्युत्तरमपि न ददासि' इत्युक्त्वा कोपेन तेन कर्तरिकामादायास्या नासिका छिन्ना। तथा कृत्वा पुनः सुप्तो गोपो निद्रामुपगतः। अथागत्य गोपी दूतीमपृच्छत्– का वार्ता।' दूत्योक्तम्–'पश्य माम्। मुखमेव वार्ता कथयति।' अनन्तरं सा गोपी तथा कृत्वात्मानं बद्ध्वा स्थिता। इयं च दूती तां छिन्ननासिकां गृहीत्वा स्वगृहं प्रविश्य स्थिता। ततः प्रातरेवानेन नापितेन स्ववधूः क्षुरभाण्डं याचिता सती क्षुरमेकं प्रादात्। ततोऽसमग्रभाण्डे प्राप्ते समुपजातकोपोऽयं नापितस्तं क्षुरं दूरादेव गृहे क्षिप्तवान्। अथ कृतार्तरावेयं मे नासिकानेन छिन्नेत्युक्त्वा धर्माधिकारिसमीपमेनमानीतवती। सा च गोपी तेन गोपेन पुनः पृष्टोवाच––'अरे पाप, को मां महासतीं विरूपयितुं समर्थः। मम व्यवहारमकल्मषमष्टौ लोकपाला एव जानन्ति। यतः––

तस्य=दूत्युक्तजारस्य, तादृशीमवस्थाम्=मदनाग्निजर्जरितदशाम्, परिक्लिष्टमनाः=दुखितचित्ता, अनुवर्तितुम्=अनुकूलयितुम्। तथाऽनुष्ठिते–गोप्यां

स्वयं स्तम्भे बद्ध्वा स्थितायां सत्याम्, प्रबुद्धः=त्यक्तनिद्रः। पापिष्ठाम्=महापापाम्, जारान्तिकम्=उपपतिसमीपम्, नयामि=प्रापयामि। दर्पात्=अभिमानात्, प्रत्युत्तरम्=प्रतिवचनम्, कर्तरिकाम्=छुरिकाम्, छिन्ना=कर्तिता। मुखमेव०—'मम मुखदर्शनेनैव का वार्ताऽस्ति' इति ज्ञास्यसि। क्षुरभाण्डम्=क्षुरस्थापनपात्रम् (लोखर), याचिता=प्रार्थिता असमग्रभाण्डे=असम्पूर्णक्षुरभाजने, समुपजातकोपः=क्रुद्धः, क्षिप्तवान्=चिक्षेप। कृतार्तरावा=कृतरोदनस्वरा, इयम्=नापितवधूः, विनापराधेन=दोषं विना, धर्माधिकारिसमीपम्=न्यायाधीशनिकटम्, एनम्=नापितम्। पाप=पापिन्!, महासतीम्=अतिशयेन पतिव्रताम्, विरूपयितुम्=विरूपां कर्तुम्। अकल्मषम्=निर्दुष्टम्, अष्टौ=अष्टसङ्ख्यकाः।

उसकी इस प्रकार की अवस्था देख मैं अत्यन्त दुखी होकर एक बार फिर तुम्हें मनाने आई हूं। मैं अपने को यहीं बाँध कर रहती हूँ और तुम वहाँ जाकर उसे संतुष्ट करके जल्दी आ जाओ। ऐसा हो जाने पर उसी समय ग्वाले की नींद खुली और उसने कहा—पापिनि! अब क्यों नहीं अपने जार के पास जा रही हो। जब उसने कुछ नहीं कहा तो ग्वाले ने क्रोध में आकर कहा कि यह मारे घमंड के मेरी बातों का उत्तर भी नहीं देती है और उसने कैंची लेकर उसकी नाक काट दी। ऐसा करके ग्वाला फिर सो गया।

तब अहिरिन ने आकर दूती से पूछा—'क्या बात?' दूती ने कहा—'मुझे देखो, मेरा मुँह ही सारी बात बताएगा।' इसके बाद गोपी ने फिर अपने को वहीं बाँध लिया। और अपनी कटी हुई नाक लेकर वह दूती अपने घर चली गई। प्रातः काल ही नाई ने अपनी बहू से छुरों का थैला मांगा, किंतु उसने केवल एक ही छुरा दिया। फिर पूरा थैला न पाने से क्रुद्ध होकर नाई ने दूर ही से छुरे को घर से फेंका। तब नाइन रोती हुई एवं 'बिना अपराध के ही इसने मेरी नाक काट ली है'—ऐसा कहती हुई इसे धर्माधिकारियों के पास लाई। जब उस ग्वाले ने ग्वालिन से फिर पूछा तो उसने कहा—'अरे पापी, मेरी जैसी सती के सौन्दर्य को कौन नष्ट कर सकता है? मेरे पवित्र आचरण को आठो लोकपाल जानते हैं। क्योंकि—

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥११२॥

अन्वयः—आदित्यचन्द्रौ अनिलः च अनलः द्यौः भूमिः आपः हृदयम् च धर्मः च अहः च रात्रिः च उभे सन्ध्ये च धर्मः नरस्य वृत्तम् जानाति (अस्य वचनविपरिणामेन प्रत्येकं सम्बन्धः कार्यः) ११२ ॥

आदित्यचन्द्रौ = सूर्यचन्द्रमसौ, अनिलः = वायुः, अनलः = अग्निः, द्यौः = आकाशम्; आपः = जलानि, तदधिष्ठातृदेवो वरुणः, अहः = दिनम्, उभे सन्ध्ये = सन्ध्याद्वयम्, वृत्तम् = आचरणम् ॥

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यम, रात, दिन और दोनों संध्या तथा धर्म ही मनुष्य के अच्छे बुरे आचरण को जानते हैं ।११२।

यद्यहं परमसती स्याम्, त्वां विहायान्यं न जाने, पुरुषान्तरं स्वप्नेऽपि नहि भजे, तेन धर्मेण छिन्नापि मम नासिकाऽच्छिन्नाऽस्तु । मया त्वं भस्म कर्तुं शक्यसे । किन्तु स्वामी त्वम् । लोकभयादुपेक्षे । पश्य मन्मुखम् । यावदसौ गोपो दीपं प्रज्वाल्य तन्मुखमवलोकते तावदुन्नसं मुखमवलोक्य तच्चरणयोः पतितः– धन्योऽहं यस्येदृशी भार्या परमसाध्वी' इति ।

परमसती = महापतिव्रता, पुरुषान्तरम् = अन्यं पुरुषम्, भजे = सेवनं करोमि । भस्म कर्तुम् = दग्धुम्, स्वामी = पतिः, लोकभयात् = जनापवादभयात् । उन्नसम् = उन्नतनासिकायुक्तम्, अच्छिन्ननासिकम्, परमसाध्वी = महासती ।

अगर मैं सती रहूँगी, तुम्हे छोड़ कर दूसरे का ध्यान नहीं करती हूँगी, स्वप्न में भी पर पुरुष को न देखती हूँगी तो मेरे इस धर्म के द्वारा मेरी नाक ठीक से हो जायेगी । मैं तुम्हें भस्म कर सकती हूँ किन्तु तुम मेरे स्वामी हो । लोकभय से ऐसा नहीं करती हूँ । मेरा मुँह देखो । जब ग्वाले ने दीपक जला कर उसका मुँह देखा तो नाक सहित मुँह को देखकर उसके पैरों पर गिर पड़ा और कहा–"मैं धन्य हूँ जिसे ऐसी सती स्त्री मिली है ॥

योऽयमास्ते साधुरेतद्वृत्तान्तमपि कथयामि । अयं स्वगृहान्निर्गतो द्वादशवर्षैर्मलयोपकण्ठादिमां नगरीमनुप्राप्तः अत्र वेश्यागृहे सुप्तः । तस्याः कुट्टन्या गृहद्वारि स्थापितकाष्ठघटितवेतालस्य मूर्धनि रत्नमेकमुत्कृष्टमास्ते । तत्र लुब्धेनानेन साधुना रात्रावुत्थाय रत्नं ग्रहीतं यत्नः कृतः । तदा तेन वेतालेन सूत्रसञ्चारितबाहुभ्यां पीडितः सन्नार्तनादमयं चकार । पश्चादुत्थाय कुट्टन्योक्तम्--पुत्र ! मलयोपकण्ठादागतोऽसि । तत्सर्वरत्नानि प्रयच्छास्मै (नो चेदनेन त्यक्तव्योऽसि ।' इत्थमेवास्य चेटकः । ततोऽनेन सर्वरत्नानि समर्पितानि यथायमपहृतसर्वस्वोऽस्मासु समागत्य मिलितः । एतत्सर्वं श्रुत्वा राजपुरुषैर्न्याये धर्माधि-

कारी प्रवर्तितः। अनन्तरं तेन सा दूती गोपी च ग्रामाद्बहिर्निःसारिते नापितश्च गृहं गतः। अतोऽहं ब्रवीमि–'स्वर्णरेखामहं स्पृष्ट्वा' इत्यादि। अथ स्वयं कृतोऽयं दोषः। अत्र विलापनं मोचितम्। (क्षणं विमृश्य) मित्र! यथानयोः सौहार्दं मया कारितं तथा मित्रभेदोऽपि मया कार्यः। यतः—

साधुः=वणिक्। मलयोपकण्ठात्=मलयपर्वतनिकटस्थप्रदेशात्, इमां नगरीम्=एतत्काञ्चनपुरीम्, स्थापितकाष्ठघटितवेतालस्य=स्थापितायाः दारुमय्याः वेतालमूर्त्याः, मूर्धनि=मस्तके; उत्कृष्टम्=श्रेष्ठम्, बहुमूल्यमित्यर्थः, सूत्रसञ्चारितबाहुभ्याम्=तन्त्रीप्रेरितहस्ताभ्याम् (यन्त्रद्वारा चलाये गये दोनों हाथोंसे), आर्तनादम्=दीनतयोच्चैः शब्दम्। प्रयच्छ=देहि। नो चेद०—अन्यथायं त्वां न त्यक्ष्यति। चेटकः=भृत्यः, अपहृतसर्वस्वः–अपहृतम्–आच्छिन्नम्, सर्वस्वम्=सर्वसम्पत्तिर्यस्य सः। विलपनम्=विलापः। सौहार्दम्=मित्रता, मित्रभेदः=सुहृद्भेदः, अनयोर्मित्रयोः परस्परं विरोध इत्यर्थः॥

और जो यह साधु है उसका भी वृत्तान्त कह रहा हूँ। सुनो—बारह वर्ष तक मलय पहाड़ पर रहकर यह इस नगर में आया है। यहाँ एक दिन यह वेश्या के घर में सो रहा था। उस कुट्टनी वेश्या के दरवाजे पर काठ के बने हुए वेताल की मूर्ति के सिर पर एक मूल्यवान् रत्न जड़ा हुआ था। लालच में आकर इस साधु ने रात में उठ कर उस रत्न को ले लेने का प्रयत्न किया। तत्काल वेताल ने डोरे से चलाई गई अपनी बाहों से इसे जकड़ लिया, जिससे यह चिल्लाने लगा। कुटनी ने उठकर कहा—पुत्र, तुम मलय पहाड़ के पास से आ रहे हो, अतः इसे सभी रत्न दे दो, नहीं तो यह तुम्हें नहीं छोड़ेगी। यही इसका व्यवहार ही है। तब इसने अपने सभी रत्नों को उसे दे दिया ओर सब कुछ चले जाने से अब हम लोगों से आ मिला है। यह सब सुनकर राजपुरुषों ने इसे न्यायालय में धर्माधिकारी के पास भेज दिया। धर्माधिकारी ने इस अहिरिन और दूतों को गाँव से बाहर निकाल दिया। नाई अपने घर चला गया। इसी लिए मैं कह रहा हूँ कि 'स्वर्णरेखा को छूकर' इत्यादि। यह तो अपना ही किया हुआ पाप है। फिर इस विषय में रोना व्यर्थ है। (थोड़ी देर विचार कर) मित्र! जैसे मैंने इन दोनों में मित्रता कराई है उसी प्रकार मैं इनकी मित्रता में फूट भी डाल दूँगा। क्योंकि—

अतथ्यान्यपि तथ्यानि दर्शयन्त्यतिपेशलाः।
समे निम्नोन्नतानीव चित्रकर्मविदो जनाः॥ १६३॥

अन्वयः—अतिपेशलाः जनाः अतथ्यानि अपि, चित्रकर्मविदः जनाः समे (चित्रपटे) निम्नोन्नतानि इव तथ्यानि दर्शयन्ति ॥ ११३ ॥

अतथ्यानि=अवर्तमानानि, तथ्यानि=वर्तमानानि, दर्शयन्ति=प्रदर्शयन्ति, अतिपेशलाः=अतिशयेन चतुराः, समे=समतले पटादौ, निम्नोन्नतानि=निम्नानि उन्नतानि च, चित्रकर्मविदः=चित्रकाराः ॥ ११३ ॥

नीतिज्ञ लोग झूठ को भी सच सिद्ध कर देते है जिस तरह कुशल चित्रकार समान भूमि को भी ऊँची नीची करके दिखा देता है।

अपरं च—उत्पन्नेष्वपि कार्येषु मतिर्यस्य न हीयते।
स निस्तरति दुर्गाणि गोपी जारद्वयं यथा ॥ ११४ ॥

अन्वयः—कार्येषु उत्पन्नेषु अति यस्य मतिः न हीयते, सः, गोपी जारद्वयम् यथा दुर्गाणि निस्तरति ॥ ११४ ॥

उत्पन्नेषु=समुपस्थितेषु, हीयते=क्षीणा भवति, निस्तरति=तरति=पारयति, जारद्वयम्=द्वौ उपपती, यथा=इव ॥ ११४ ॥

और भी—कार्य के उपस्थित हो जाने पर भी जिसकी बुद्धि क्षीण नहीं होती, वह कठिनाई से उसी प्रकार बच जाता है जैसे उस अहिरिन ने दोनों जारों को बचा लिया था ॥ ११४ ॥

करटकः पृच्छति—कथमेतत्? दमनकः कथयति।

करटक ने पूछा—यह कैसे? दमनक ने कहा—

कथा ६

अस्ति द्वारवत्यां पुर्यां कस्यचिद्गोपस्य वधूर्बन्धकी। सा ग्रामस्य दण्डनायकेन तत्पुत्रेण च समं रमते। तथा चोक्तम्—

द्वारवत्याम्=द्वारकायाम्, बन्धकी=व्यभिचारिणी। दण्डनायकेन=दण्डाध्यक्षेण (कोतवाल के साथ), समम्=सह, रमते=व्यभिचारं करोति ॥

द्वारवती नगरी में किसी ग्वाले की पत्नी कुलटा थी। वह उस गाँव के मुखिया और उसके पुत्र—दोनों के साथ सम्भोग करती थी। जैसा कि कहा भी है—

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥ ११५ ॥

अन्वयः—अग्निः काष्ठानाम्, महोदधिः आपगानाम्, अन्तकः सर्वभूतानाम् (च) वामलोचनाः पुंसाम् न तृप्यति ॥ ११५ ॥

काष्ठानाम्=इन्धनानाम्, आपगानाम्—अपां समूहः आपम्, तेन गच्छन्ति इति आपगास्तासाम्=नदीनाम्, अन्तकः=यमराजः, सर्वभूतानाम्=समस्तजीवानाम्, वामलोचनाः=युवतयो नार्यः ॥ ११५ ॥

अग्नि लकड़ियों से, समुद्र नदियों से, यमराज सभी प्राणियों से और नारी पुरुषों से कभी भी तृप्त नहीं होती ॥ ११५ ॥

अन्यच्च—**न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया।**
न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः ॥ ११६॥

अन्वयः—स्त्रियः दानेन न, मानेन न, आर्जवेन न, सेवया न, शस्त्रेण न, शास्त्रेण न, (वशगामिन्यः भवन्ति, यतः) स्त्रियः सर्वथा विषमाः (भवन्ति) ॥

मानेन=आदरेण, आर्जवेन—सरलतया, शस्त्रेण=आयुधादिताडनेन, शास्त्रेण=शास्त्रोपदेशेन, विषमाः=कठिनाः ॥ ११६ ॥

और भी–स्त्रियाँ न तो दान से, न सन्मान से, न खुशामद से; न सेवा से, न हथियार से और न तो शास्त्र ही से सुधारी जा सकती हैं। इसीलिए वे बड़ी भयानक होती हैं ॥ ११६ ॥

यतः—**गुणाश्रयं कीर्तियुतं च कान्तं पतिं रतिज्ञं सधनं युवानम्।**
विहाय शीघ्रं वनिता व्रजन्ति नरान्तरं शीलगुणादिहीनम् ॥

अन्वयः—वनिताः गुणाश्रयम् कीर्तियुतम् कान्तम् रतिज्ञम् सधनम् युवानम् पतिम् विहाय शीलगुणादिहीनम् नरान्तरम् शीघ्रम् व्रजन्ति ॥ ११७ ॥

गुणाश्रयम्=शौर्यादिगुणवन्तम्, कीर्तियुतम्=यशस्विनम्, कान्तम्=रम्यम्, रतिज्ञम्=कामशास्त्रज्ञम्, युवानम्=युवकम्, वनिताः=स्त्रियः, नरान्तरम्=अन्यं नरम्, जारमित्यर्थः ॥ ११७ ॥

क्योंकि–गुणी, यशस्वी, सुन्दर, रतिकला के ज्ञाता, धनी तथा नवयुवक पति को भी छोड़कर स्त्रियाँ अन्य दुराचारी तथा दुष्ट मनुष्य के पास शीघ्र चली जाती हैं ॥ ११७ ॥

अपरं च—
न तादृशीं प्रीतिमुपैति नारी विचित्रशय्या शयितापि कामम्।
यथा हि दूर्वादिविकीर्णभूमौ प्रयाति सौख्यं परकान्तसङ्गात् ॥११८॥

अन्वयः—नारी कामम् विचित्रशय्याम् शयिता अपि तादृशीम् प्रीतिम् न उपैति, यथा हि दूर्वादिविकीर्णभूमौ परकान्तसङ्गात् सौख्यम् प्रयाति ॥ ११८॥

विचित्रशय्याम् = उज्ज्वलप्रच्छदपटादिना विचित्रपर्यङ्कम्, शयिता—सुप्ता, कामम् = यथेष्टम्, दूर्वादिविकीर्णभूमौ = दूर्वादितृणाच्छन्नभूतले, परकान्तसङ्गात् = अन्यपतिसहवासात् ॥ ११८ ॥

और भी—नारी सुन्दर शय्या पर सोती हुई भी उतना प्रसन्न नहीं होती है, जितना दूसरे पुरुष के साथ घासफूस आदि से भरी भूमि पर सो कर सुखी होती है ॥ ११८ ॥

अथ कदाचित्सा दण्डनायकपुत्रेण सह रममाणा तिष्ठति । अथ दण्डनायकोऽपि रन्तुं तत्रागतः । तमायान्तं दृष्ट्वा तत्पुत्रं कुसूले निक्षिप्य दण्डनायकेन सह तथैव क्रीडति । अनन्तरं तस्य भर्ता गोपो गोष्ठात्समागतः । तमवलोक्य गोप्योक्तम्—'दण्डनायक, त्वं लगुडं गृहीत्वा कोपं दर्शयन्सत्वरं गच्छ' । तथा तेनानुष्ठिते, गोपेन गृहमागत्य पृष्ठा—'केन कार्येण दण्डनायकः समागत्यात्र स्थितः ।' सा ब्रूते—'अन्यं केनापि कार्येण पुत्रस्योपरि क्रुद्धः । स च मार्ग्यमाणोऽप्यत्रागत्य प्रविष्टो मया कुसूले निक्षिप्य रक्षितः । तत्पित्रा चान्विष्यात्र न दृष्टः । अत एवायं दण्डनायकः क्रुद्ध एव गच्छति ।' ततः सा तत्पुत्रं कुसूलाद्बहिष्कृत्य दर्शितवती । तथा चोक्तम्—

सा = गोपी, दण्डनायकपुत्रेण = दण्डाध्यक्षसुतेन, रममाणा—रमणं कुर्वन्ती, रन्तुम् = रमणं कर्तुम् । कुसूले = अन्नभाजने (कोठिला या बखार), तथा = प्राग्वत्, गोष्ठात् = गोस्थानात् । लगुडम् = वंशदण्डम् (लाठी), कोपं दर्शयन्—कोपप्रदर्शनं कुर्वन्, न तु वस्तुतः, कुपितः तत्कारणाभावादित्यर्थः । अनुष्ठिते = कृते, केनापि कार्येण = कस्मैचित् प्रयोजनाय, अयम् = दण्डनायकः, पलायमानः = पलायनं कुर्वन्, अन्विष्यता = अन्वेषणं कुर्वता ।

एक बार वह मुखिया के बेटे के साथ सम्भोग कर रही थी कि उसी बीच मुखिया भी उसके साथ सम्भोग करने के लिए आ पहुँचा । उसे आया हुआ देख कर उसने उसके बेटे को बखार में छिपा दिया और मुखिया के साथ आनन्द लेने लगी । इसी बीच उसका पति ग्वाला गोशाला से आ पहुँचा । तब ग्वालिन ने उसे देखकर मुखिया से कहा—'तुम डंडा लेकर क्रोध करते हुए बाहर निकलो । उसके ऐसा करने पर ग्वाले ने घर में आकर पूछा कि 'मुखिया यहाँ

किस लिए आया था ?' उसने कहा—यह किसी कारण से अपने पुत्र पर क्रुद्ध हुआ था। वह भगा हुआ मेरे घर में घुस आया, मैंने उसे बखार में छिपा कर बचा लिया। उसका पिता यहाँ आया किंतु नहीं देखा। इसीलिए वह क्रुद्ध होकर गया है। तब उसने बखार से निकाल कर उसके पुत्र को दिखा दिया। जैसा कि कहा भी है—

आहारो द्विगुणः स्त्रीणां बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः॥ ११९॥

अन्वयः—स्त्रीणाम् आहारः द्विगुणः तासाम् बुद्धिः चतुर्गुणा, च व्यवसायः षड्गुणः च कामः च अष्टगुणः स्मृतः॥ ११९॥

आहारः=भोजनम्, द्विगुणः=द्विगुणितः, व्यवसायः=परिश्रमादिव्यापारः, कामः=कामवासना, सम्भोगाभिलाषः इत्यर्थः, स्मृतः=कथितः॥११९॥

स्त्रियों का भोजन पुरुष की अपेक्षा दूना, उनकी बुद्धि चौगुनी, प्रयत्नशीलता छ गुनी और कामुकता आठगुनी होती है॥ ११९॥

अतोऽहं ब्रवीमि—'उत्पन्नेष्वपि कार्येषु' इत्यादि।

इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि 'कार्य पड़ने पर।' आदि।

करटको ब्रूते—'अस्त्वेवम्। किं त्वनयोर्महानन्योन्यनिसर्गोपजातस्नेह, कथं भेदयितुं शक्यः।' दमनको ब्रूते—'उपायः क्रियताम्।' तथा चोक्तम्—

अनयोः=सिंहवृषभयोः, अन्योन्यनिर्गोपजातस्नेहः=स्वभावेन परस्परमुत्पन्नं प्रेम, भेदयितुम्=नाशयितुम्।

करटक ने कहा—यह तो ठीक है। किन्तु इन दोनों में अत्यन्त महान् और स्वाभाविक प्रेम हो गया है, अतः तुम उनमें कैसे फूट डाल सकते हो। दमनक ने कहा—उपाय करो—जैसा कि कहा भी गया है—

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।
काक्या कनकसूत्रेण कृष्णसर्पो निपातितः॥ १२०॥

अन्वयः—यत् (कार्यम्) उपायेन शक्यम् (भवति), तत् पराक्रमैः न शक्यम् (अस्ति) हि काक्या कनकसूत्रेण कृष्णसर्पः निपातितः॥ १२०॥

यत्=कार्यम्, शक्यम्=साध्यम्, पराक्रमैः=बलैः। काक्या=काकस्त्रिया, कनकसूत्रेण (सोनेकी जंजीरसे), कृष्णसर्पः (करैत साँप), निपातितः=मारितः॥

उपाय से जो हो सकता है वह बल द्वारा नहीं हो सकता है। कौवी ने सोने की जंजीर के माध्यम से काल सर्प को मार डाला ॥ १२० ॥

करटकः पृच्छति--कथमेतत् ?' दमनकः कथयति ।

करटक ने कहा—यह कैसे ?' दमनक ने कहा—

कथा ७

कस्मिंश्चित्तरौ वायसदम्पती निवसतः। तयोश्चापत्यानि तत्कोटरावस्थितेन कृष्णसर्पेण खादितानि। ततः पुनर्गर्भवती वायसी वायसमाह--'नाथ ! त्यज्यतामयं वृक्षः। अत्रावस्थितकृष्णसर्पेणावयोः संततिः सततं भक्ष्यते ! यतः—

तरौ=वृक्षोपरि, वायसदम्पती=काकः काकी च (कौवेकी जोड़ी), अपत्यानि=सन्तानानि, तत्कोटरावस्थितेन---तस्य=वृक्षस्य, कोटरे=छिद्रे (खोंढरेमें), अवस्थितेन=स्थितेन। सततम्=सर्वदा ॥

किसी वृक्ष पर कौवों का एक जोड़ा रहता था। उसके बच्चों को उसी पेड़ के खोखले में रहने वाला काला साँप खा जाया करता था। इसके बाद जब कौवी फिर गर्भवती हुई तो उसने कौवे से कहा--स्वामी ! इस वृक्ष को छोड़ दो। यहाँ रहने वाला काला साँप हम लोगों की सन्तानों को बराबर खा लिया करता है। क्योंकि—

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः' ॥ १२१ ॥

अन्वयः--दुष्टा भार्या, शठम् मित्रम्, च उत्तरदायकः भृत्यः, च ससर्पे गृहे वासः (इत्येतत्सर्वम्) मृत्युः एव (अस्ति, अस्मिन्) संशयः न (अस्ति) ॥१२१॥

दुष्टा=चण्डी, शठम्=कपटयुक्तम्, उत्तरदायकः=प्रत्युत्तरदाता, ससर्पे=सर्पसहिते, वासः=निवासः ॥

दुष्ट स्त्री, धूर्त मित्र, जवाब देने वाला नौकर तथा साँप वाले घर में रहना हमेशा मृत्यु का कारण बनता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं ॥ १२१ ॥

वायसो ब्रूते—'प्रिये ! न भेतव्यम्। वारंवारं मयैतस्य महापराधः सोढः। इदानीं पुनर्न क्षन्तव्यः।' वायस्याह--'कथमेतेन बलवता सार्धं भवान् विग्रहीतुं समर्थः।' वायसो ब्रूते—अलमनया शङ्कया। यतः--

वायसः = काकः । भेतव्यम् = भयं कर्तव्यम् । महापराधः = महान् दोषः, सोढः = सहनं कृतम् । इदानीम् = अधुना, क्षन्तव्यः = क्षमार्हः । बलवता = बलिना, विग्रहीतुम् = योद्धुम्, अलमनया शङ्कया = एवं शङ्का न कर्तव्या ।।

कौवे ने कहा—प्रिये डरो मत । बराबर मैंने इसके अपराध को क्षमा किया है अब मैं इसे क्षमा नहीं करूँगा । कौवी ने कहा—आप इस बलवान के साथ कैसे झगड़ा कर सकेंगे । कौवे ने कहा—ऐसी शंका न करो । क्योंकि—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
पश्य सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः' ।। १२२ ।।

यस्य बुद्धिः (अस्ति), तस्य बलम् (अस्ति), निर्बुद्धेः तु कुतः बलम् (अस्ति), पश्य, मदोन्मत्तः सिंहः शशकेन निपातितः ।। १२२ ।।

निर्बुद्धेः = बुद्धिहीनस्य । मदोन्मत्तः = मदोद्धतः ।।

जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है, जो बुद्धिहीन है उसके पास कहाँ बल होता है । देखो, मतवाले सिंह को खरगोश ने मार डाला ।। १२२।।

वायसी विहस्याह—'कथमेतत् ।' वायसः कथयति—

कौवी ने हँसकर कहा—'यह कैसे ?' कौवे ने कहा—

कथा ८

अस्ति मन्दरनाम्नि पर्वते दुर्दान्तो नाम सिंहः । स च सर्वदा पशूनां वधं कुर्वन्नास्ते । ततः सर्वैः पशुभिर्मिलित्वा स सिंहो विज्ञप्तः—'मृगेन्द्र ! किमर्थमेकदा बहुपशुघातः क्रियते । यदि प्रसादो भवति तदा वयमेव भवदाहाराय प्रत्यहमेकैकं पशुमुपढौकयामः ।' ततः सिंहेनोक्तम्—'यद्येतदभिमतं भवतां तर्हि भवतु तत् ।' ततः प्रभृत्येकैकं पशुमुपकल्पितं भक्षयन्नास्ते । अथ कदाचिद् वृद्धशशकस्य वारः समायातः । सोऽचिन्तयत्—

मन्दरनाम्नि = मन्दरनामके, विज्ञप्तः = निवेदितः । बहुपशुघातः = अनेकपशुवधः, प्रसादः = प्रसन्नता, प्रत्यहम् = प्रतिदिनम्, उपढौकयामः = प्रापयामः । अभिमतम् = अभीष्टम्, ततः प्रभृति = तस्मात् दिनादारभ्य, उपकल्पितम् = वन्यपशुभिर्नियतम्, वृद्धशशकस्य = प्रवयसः शशकस्य (बूढे खरहे की) ।।

मन्दर नाम के पहाड़ पर दुर्दान्त नाम का सिंह रहता था । वह सर्वदा जानवरों को मारा करता था । तब सभी जानवरों ने मिलकर सिंह से कहा—

'हे मृगेन्द्र ! क्यों एक ही साथ बहुत से जानवरों को मारते हैं । यदि आप कृपा करें तो हम लोग ही आपके भोजन के लिए प्रतिदिन एक-एक जानवर सेवा में भेज दिया करें ।' सिंह ने कहा—'यदि आप लोगों की यही इच्छा है तो ऐसा ही होना चाहिए । उसी समय से प्रतिदिन एक-एक भेजे गए जानवर को खाकर वह रहने लगा । एक दिन एक बूढ़े खरगोश की बारी आई । उसने विचार किया—

'त्रासहेतोर्विनीतिस्तु क्रियते जीविताशया ।
पञ्चत्वं चेद्गमिष्यामि किं सिंहानुनयेन मे ।। १२३ ।।

अन्वयः—त्रासहेतोः विनीतिः तु जीविताशया क्रियते, चेत् (अहम्) पञ्चत्वम् गमिष्यामि, (तर्हि) सिंहानुनयेन मे किम् (अस्ति) ? ।। १२३ ।।

त्रासहेतोः = भयकारणीभूतात् नृपादेः, विनीतिः = विनयः, जीविताशया= अहमस्यानुयेन जीविष्यामि इत्याशयाः, पञ्चत्वं० = यदि मरिष्यामि, सिंहानुनयेन = सिंहप्रार्थनया ।।

जीवन की आशा से ही भयभीत करने वाले की प्रार्थना की जाती है । यदि मुझे मरना ही है तो क्यों सिंह से प्रार्थना करूँ ।। १२३ ।।

तन्मन्दं मन्दं गच्छामि ।' ततः सिंहोऽपि क्षुधापीडितः कोपात्तमुवाच—'कुतस्त्वं विलम्ब्य समागतोऽसि ।' शशकोऽब्रवीत्—'देव ! नाहमपराधी । आगच्छन्पथि सिंहान्तरेण बलाद्धृतः । तस्याग्रे पुनरागमनाय शपथं कृत्वा स्वामिनं निवेदयितुमत्रागतोऽस्मि ।' सिंहः सकोपमाह—'सत्वरं गत्वा दुरात्मानं दर्शय, क्व स दुरात्मा तिष्ठति ।' ततः शशकस्तं गृहीत्वा गम्भीरकूपं दर्शयितुं गतः तत्रागत्य 'स्वयमेव पश्यतु स्वामी' इत्युक्त्वा तस्मिन् कूपजले तस्य सिंहस्यैव प्रतिबिम्बं दर्शितवान् । ततोऽसौ क्रोधाध्मातो दर्पात्तस्योपर्यात्मानं निक्षिप्य पञ्चत्वं गतः । अतोऽहं ब्रवीमि—'बुद्धिर्यस्य' इत्यादि ।

मन्दं मन्दम् = शनैः शनैः । कुतः = कस्मात् कारणात्, विलम्ब्य—विलम्बं कृत्वा । सिंहान्तरेण = अन्यसिंहेन, बलाद्धृतः = बलपूर्वकं गृहीतः । शपथम् = समयम, (सौगन्ध), सकोपम् = क्रोधपूर्वकम्, दुरात्मानम् = दुष्टम् । गंभीरकूपम् = गंभीरान्धुम् (गहरे कूँएको), गतः = कूपसमीपं गतवान् । प्रतिबिम्बम् = प्रतिच्छायाम् । क्रोधाध्मातः = क्रोधपूर्णः, दर्पात् = गर्वात्, तस्यो०—प्रतिबिम्बोपरि कूर्दित्वा मृतः । सम्प्रति = इदानीम् ।

इसलिए धीरे-धीरे चलूं । तब सिंह ने भूख से व्याकुल होकर क्रोध के साथ

कहा कि—'तुम क्यों इतनी देरी से आए हो।' खरगोश ने कहा—'इसमें मेरा दोष नहीं है। रास्ते में आते समय एक दूसरे बलवान सिंह ने मुझे पकड़ लिया। उसके सामने फिर आने की कसम खाकर स्वामी को सूचना देने यहाँ आया हूँ।' सिंह ने क्रुद्ध होकर कहा कि—शीघ्र ही चलकर उस दुष्ट को दिखाओ कि वह कहाँ रहता है।' तब खरगोश उसे लेकर एक गहरा कुआँ दिखाने के लिए गया। यहाँ जाकर उसने कहा कि 'स्वामी, आप स्वयं देख लें। ऐसा कह कर उस कुएँ के जल में उसी सिंह की छाया दिखला दी। इसके बाद वह क्रोध तथा घमंड में आकर कुएँ में कूद पड़ा और मर गया। इसी लिए मैं कह रहा हूँ कि—'जिसके पास बुद्धि है' आदि।

वायस्याह—'श्रुतं मया सर्वम्। संप्रति यथा कर्तव्यं ब्रूहि।' वायसोऽवदत्—'अत्रासन्ने सरसि राजपुत्रः प्रत्यहमागत्य स्नाति। स्नानसमये मदङ्गादवतारितं तीर्थशिलानिहितं कनकसूत्रं चञ्च्वा विधृत्यानीयास्मिन् कोटरे धारयिष्यसि।' अथ कदाचित्स्नातुं जलं प्रविष्टे राजपुत्रे वायस्या तदनुष्ठितम्। अथ कनकसूत्रानुसरणप्रवृत्तैः राजपुरुषैस्तत्र तरुकोटरे कृष्णसर्पो दृष्टो व्यापादितश्च। अतोऽहं ब्रवीमि—'उपायेन हि यच्छक्यम्' इत्यादि। करटको ब्रूते—'यद्येवं तर्हि गच्छ। शिवास्ते सन्तु पन्थानः।' ततो दमनकः पिङ्गलकसमीपं गत्वा प्रणम्योवाच—देव! आत्ययिकं किमपि महाभयकारि कार्यं मन्यमानः समागतोऽस्मि। यतः—

आसन्ने = निकटवर्तिनि, सरसि = तडागे, स्नाति–स्नानं करोति। तदङ्गादवतारितम् = राजपुत्रशरीरान्निस्सारितम्, तीर्थशिलानिहितम् = तीरस्थप्रस्तरे स्थापितम्, चञ्च्वा = त्रोटया, धारयिष्यसि = पातयिष्यसि, पातयेत्यर्थः। तदनुष्ठितम् = कनकसूत्रं तरुकोटरे पातितवती। कनकसूत्रानुसरणप्रवृत्तैः = स्वर्णसूत्रप्राप्तये काकीमुद्दिश्यानुधावद्भिः, व्यापादितः = हतः। आत्ययिकम् = हानिकारकम्, महाभयकारि = अतिशयेन भयप्रदम्, मन्यमानः = मन्वानः॥

कौवी ने कहा—'मैंने सब कुछ सुन लिया। इस समय जो करना है उसे बताओ।' कौवे ने कहा—इस निकट के तालाब में राजकुमार प्रतिदिन आकर स्नान करता है। तुम स्नान के समय, उतार कर शिला पर रखे हुए स्वर्णसूत्र को चोंच से पकड़ कर लाओ और इस खोखले में रख दो। एक बार जब राजपुत्र जल में स्नान करने के लिए उतर पड़ा तो कौवी ने वैसा ही किया। इसके बाद उस सुवर्णसूत्र की खोज करने वाले सिपाहियों ने खोखले में काले सांप को देखा और उसे मार डाला। इसीलिए मैं कह रहा हूँ—'उपायसे

जो हो सकता है' इत्यादि । करटक ने कहा—'यदि ऐसा है तो जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो ।' तब दमनक ने पिंगलक के समीप जाकर प्रणाम करके कहा—देव, आप पर आने वाली एक महान विपत्ति को जानकर यहाँ आया हूँ । क्योंकि—

आपद्युन्मार्गगमने कार्यकालात्ययेषु च ।
कल्याणवचनं ब्रूयादपृष्टोऽपि हितो नरः ॥ १२४ ॥

अन्वयः—आपदि उन्मार्गगमने च कार्यकालात्ययेषु हितः नरः अपृष्टः अपि कल्याणवचनम् ब्रूयात् ॥ १२४ ॥

आपदि = आपत्काले, उन्मार्गगमने = कुमार्गगमने कार्यकालात्ययेषु–कार्यस्य कालः तस्य अत्ययेषु = कर्तव्यसमयविनाशेषु, कल्याणवचनम्–हितकृद्वाक्यम्, अपृष्टः = अननुयुक्तः, हितः = हितेच्छुकः ॥ १२४ ॥

कल्याण चाहने वाले पुरुष को, आपत्ति के समय कार्य का समय बीतते समय तथा बुरे मार्ग में जाते समय स्वामी को देखकर बिना पूछे ही सारी बातें बता देनी चाहिए ॥ १२४ ॥

अन्यच्च–भोगस्य भाजनं राजा न राजा कार्यभाजनम् ।
राजकार्यपरिध्वंसी मन्त्री दोषेण लिप्यते ॥ १२५ ॥

अन्वयः– राजा भोगस्य भाजनम् (अस्ति), राजा कार्यभाजनं न (अस्ति), राजकार्यपरिध्वंसी मन्त्री दोषेण लिप्यते ॥ १२५ ॥

भोगस्य = भोगकरणस्य, भाजनम् = पात्रम्, कार्यपात्रम् = कार्यकर्ता । राजकार्यपरिध्वंसी = राजकार्यनाशकः, दोषेण लिप्यते = दोषी भवति ॥ १२५ ॥

और भी—राजा केवल भोग का पात्र होता है अर्थात् भोग करने वाला होता है, वह कार्य करने वाला नहीं होता । राजा के काम को बिगाड़ने वाला मंत्री ही दोषी होता है ॥ १२५ ॥

तथा हि पश्य । अमात्यानामेष क्रमः—

और देखिए, मंत्रियों का यह नियम है—

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाऽपि कर्तनम् ।
न तु स्वामिपदावाप्तिपातकेच्छोरुपेक्षणम् ॥ १२६ ॥

अन्वयः—प्राणपरित्यागः वा शिरसः अपि कर्तनम् वरम् (अस्ति), तु स्वामिपदावाप्तिपातकेच्छोः उपेक्षणम् न वरम् (अस्ति) ॥ १२६ ॥

प्राणपरित्यागः = मरणम्, शिरसः — — कर्तनम् = शिरश्छेदनं वा स्वामि-

पदावाप्तिपातकेच्छोः—स्वामिनः पदस्य=स्थानस्य राज्यस्येत्यर्थः, अवाप्तिः लाभः एव पातकं तस्येच्छुः तस्य=राज्यलाभरूपपातकं कर्तुमिच्छुकस्य, उपेक्षणम्= उपेक्षा ॥ १२६ ॥

प्राणों का परित्याग करना अच्छा है अथवा सिर भी कटा देना उत्तम है किन्तु स्वामी के पद को हड़पने की इच्छा करने वाले को उपेक्षा करना ठीक नहीं है ॥ १२६ ॥

पिङ्गलकः सादरमाह—'अथ भवान् किं वक्तुमिच्छति।' दमनको ब्रूते—'देव ! संजीवकस्तवोपर्यसदृशव्यवहारीव लक्ष्यते। तथा चास्मत्सन्निधाने श्रीमद्देवपादानां शक्तित्रयनिन्दां कृत्वा राज्यमेवाभिलषति।' एतच्छ्रुत्वा पिङ्गलकः सभयं साश्चर्यं मत्वा तूष्णीं स्थितः' दमनकः पुनराह—देव ! सर्वामात्यपरित्यागं कृत्वैक एवायं यत्त्वां सर्वाधिकारी कृतः, स एव दोषः। यतः—

असदृशव्यवहारी इव=अनुचितव्यवहारकर्तेव, लक्ष्यते=प्रतीयते। अस्मत्सन्निधाने अस्माकं निकटे, श्रीमद्देवपादानाम्=भवताम्, शक्तित्रयनिन्दाम्= प्रभुमन्त्रोत्साहरूपाणां तिसृणां शक्तिनां निन्दनम्। तूष्णीं स्थितः=मौनो जातः। सर्वामात्यपरित्यागं कृत्वा=सर्वान्मन्त्रिणः सन्त्यज्य ॥

पिंगलक ने आदर के साथ कहा—'आप क्या कहना चाहते हैं।' दमनक ने कहा—'संजीवक आप के प्रतिकूल कार्य करता हुआ दिखाई पड़ रहा है। उसने हमारे सामने आप की तीनों शक्ति (प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति, तथा उत्साहशक्ति) की निन्दा करते हुए राज्य ले लेने की इच्छा व्यक्त की है। यह सुनकर पिंगलक भय और आश्चर्य के साथ थोड़ी देर के लिए सन्न हो गया। दमनक ने फिर कहा—आपने सभी मंत्रियों को छोड़कर इसी को सर्वाधिकारी बना दिया, आप से यही गलती हुई। क्योंकि—

अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे च
विष्टभ्य पादावुपतिष्ठते श्रीः।
सा स्त्रीस्वभावादसहा भरस्य
तयोर्द्वयोरेकतरं जहाति ॥ १२७ ॥

अन्वयः—लक्ष्मीः अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि च पार्थिवे पादौ विष्टभ्य उपतिष्ठते, सा स्त्रीस्वभावात् भरस्य असहा (सती) तयोः द्वयोः एकतरम् जहाति ॥ १२७ ॥

अत्युच्छ्रिते=अत्युन्नते संभावयुक्ते च, पार्थिवे=नृपे, विष्टभ्य=स्थिरी कृत्वा, उपतिष्ठते=सेवते समाश्रयति च। असहा=सोढुमसमर्था, भरस्य=भारस्य, तयोर्द्वयोः=पार्थिवमन्त्रिणोः, एकतरम्=कमप्येकम्, जहाति=त्यजति ॥

अत्यन्त उन्नत मंत्री अथवा राजा के चरणों का अवलम्बन लेकर ही लक्ष्मी टिकती है किन्तु स्त्रीस्वभाव के कारण वह अधिक भार नहीं सहन कर सकती इसलिए वह उन दोनों में से एक का परित्याग कर देती है ॥ १२७ ॥

अपरं च--एकं भूमिपतिः करोति सचिवं राज्ये प्रमाणं यदा
तं मोहाच्छ्रयते मदः स च मदालस्येन निर्भिद्यते ।
निर्भिन्नस्य पदं करोति हृदये तस्य स्वतन्त्रस्पृहा
स्वातन्त्र्यस्पृहया ततः स नृपतेः प्राणान्तिकं द्रुह्यति ॥

अन्वयः—यदा भूमिपतिः एकम् सचिवम् राज्ये प्रमाणं करोति, मोहात् तम् मदः अयते, स च मदालस्येन निर्भिद्यते, निर्भिन्नस्य तस्य हृदये स्वतन्त्रस्पृहा पदम्. करोति, ततः स स्वतन्त्रस्पृहया नृपतेः प्राणान्तिकम् द्रुह्यति ॥ १२८ ॥

सचिवम्=मन्त्रिणम्, प्रमाणम्=प्रधानत्वेनाभिमतम्, तम्=सचिवम्, मोहात्=अभिमानात्, मदः=गर्वः, दास्येन=दासतया, निर्भिद्यते=खिद्यते, पदम्=स्थानम्, स्वतन्त्रस्पृहा=स्वातन्त्र्येच्छा, प्राणान्तिकम्=प्राणघातावधि, द्रुह्यति=द्रोहं करोति ॥ १२८ ॥

और भी—जब राजा एक ही मंत्री को राज्य का सारा अधिकार दे देता है तो अज्ञान वश उसे अभिमान हो जाता है और अभिमान तथा आलस्य उसके हृदय में भेदभाव उत्पन्न कर देते हैं। भेद आ जाने के कारण उसके हृदय में स्वतंत्र हो जाने की इच्छा आ जाती है और इसी स्वतंत्रता की इच्छा से वह राजा से प्राणघातक द्रोह करने लगता है ॥ १२८ ॥

अन्यच्च—विषदग्धस्य भक्तस्य दन्तस्य चलितस्य च ।
अमात्यस्य च दुष्टस्य मूलादुद्धरणं सुखम् ॥ १२९ ॥

अन्वयः--विषदग्धस्य भक्तस्य, च चलितस्य दन्तस्य च दुष्टस्य अमात्यस्य मूलात् उद्धरणम् सुखम् (भवति) ॥ १२९ ॥

विषदग्धस्य=विषाक्तस्य, भक्तस्य=ओदनस्य (भात का), चलितस्य=दोलायमानस्य, अमात्यस्य=मन्त्रिणः, मूलादुद्धरणं=समूलोत्पाटनं सुखकरं भवति

और भी—विष भरे भोजन, हिलते हुए दाँत और दुष्ट मंत्री को जड़ से उखाड़ फेंकने से ही सुख होता है ॥ १२९ ॥

किञ्च--यः कुर्यात्सचिवायत्तां श्रियं तद्व्यसने सति ।
सोऽन्धवज्जगतीपालः सीदेत्सञ्चारकैर्विना ।। १३० ।।

अन्वयः—यः (जगतीपालः) श्रियम् सचिवायत्ताम् कुर्यात्; सः जगतीपालः तद्व्यसने सति संचारकैः विना अन्धवत् सीदति ।। १३० ।।

सचिवायत्ताम्=सचिवाधीनाम्, तद्व्यसने=सचिवव्यसने, अन्धवत्=अन्धेन अनुल्यम्, जगतीपालः=भूपतिः, सीदेत्=दुःखितो भवेत्, सञ्चारकैर्विना=सेवकैः विना ।।

और भी जो राजा अपनी राजलक्ष्मी को अपने मंत्री के अधीन कर देता है तो वह विपत्ति के समय उसी अंधे के समान कष्ट पाता है जिसे कोई मार्ग बताने वाला नहीं होता ।। १३० ।।

सर्वकार्येषु स्वेच्छातः प्रवर्तते । तदत्र प्रमाणं स्वामी । एतच्च जानाति —

स्वेच्छातः=स्वेच्छया, प्रवर्तते=कार्ये प्रवृत्तो भवति ।

वह मंत्री सभी काम अपनी इच्छा के अनुसार करने लगता है । अब आप जैसा चाहें वैसा करें । आप यह तो जानते ही है कि—

न सोऽस्ति पुरुषो लोके यो न कामयते श्रियम् ।
परस्य युवतिं रम्यां सादरं नेक्षतेऽत्र कः ।। १३१ ।।

अन्वयः--लोके सः पुरुषः न अस्ति, यः श्रियम् न कामयते । परस्य रम्याम् युवतीम् अत्र कः सादरम् न ईक्षते ? ।। १३१ ।।

कामयते=अभिलषति, श्रियम्=राजलक्ष्मीम्, पक्षे धनम्, सादरम्=आदरपूर्वकम्, भोगेच्छयेति शेषः, ईक्षते=पश्यति ।।

संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं होता जो लक्ष्मी की कामना न रखता हो । भला दूसरे की सुन्दरी स्त्री को आदर के साथ कौन नहीं देखता ?।।१३१।।

सिंहो विमृश्याह-'भद्र ! यद्यप्येवं तथापि सञ्जीवकेन सह मम महान् स्नेहः । पश्य--

विमृश्य=विचार्य, एवम्=त्वदुक्त्यनुरूपम् ।

सिंह ने विचार करके कहा—भाई, आप का कहना तो ठीक है लेकिन संजीवक के साथ मेरा बहुत स्नेह है । देखो—

कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः प्रिय एव सः ।
अशेषदोषदुष्टोऽपि कायः कस्य न वल्लभः ॥ १३२ ॥

अन्वयः—यः प्रियः (अस्ति), सः व्यलीकानि कुर्वन्नपि प्रियः एव (अस्ति) अशेषदोषदुष्टा अपि कायः कस्य (जनस्य) बल्लभः न (भवति) ? ॥१३२॥

व्यलीकानि=अपराधान् । अशेषदोषदुष्टः=सकलदोषयुक्ततला दुष्टोऽपि, कायः=शरीरम्, वल्लभः=प्रियतमः । अनेकदोषपूर्णदेहवत् प्रतिकूलमाचरन् प्रियो जनः सदा प्रिय एव जायते ॥

कितना ही अपराध करने पर भी प्रिय व्यक्ति सर्वदा प्रिय ही रहेगा । जैसे इस शरीर में सभी प्रकार के दोष होते हैं फिर भी वह किसे प्रिय नहीं होता ॥

अन्यच्च—अप्रियाण्यपि कुर्वाणो यः प्रियः प्रिय एव सः ।
दग्धमन्दिरसारेऽपि कस्य वह्नावनादरः ॥ १३३ ॥

अन्वयः—यः प्रियः (अस्ति), सः अप्रियाणि अपि कुर्वाणः प्रियः एव (अस्ति) दग्धमन्दिरसारे अपि वह्नौ कस्य (जनस्य) अनादरः भवति ॥१३३॥

अप्रियाणि=अनिष्टानि, कुर्वाणः=कुर्वन्, दग्धमन्दिरसारः—दग्धः=भस्मीकृतः, मन्दिरस्य=गृहस्य, सारः=सारभूतं वस्तु येन सः तस्मिन्, वह्नौ=अग्नौ, अनादरः=तिरस्कारः, त्याग उपेक्षा वेत्यर्थः । न कस्यापीति भावः ॥

और भी—अप्रिय कार्य करने पर भी प्रिय व्यक्ति प्रिय ही रहेगा । आग कितने घर जला डालती है, फिर भी कौन उसका अनादर करता है ? ॥१३३॥

दमनकः पुनरेवाह—'देव ! स एवातिदोषः । यतः—

देव !=श्रीमन् ! अतिदोषः=महान् अगुणः ।

दमनक ने फिर कहा—'राजन्, यही तो सबसे बड़ा दोष है । क्योंकि—

यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोहयति पार्थिवः ।
सुतेऽमात्येऽप्युदासीने स लक्ष्म्याश्रीयते जनः ॥१३४॥

अन्वयः—पार्थिवः यस्मिन् एव सुते अमात्ये उदासीने अपि चक्षुः अधिकम् आरोहयति, सः जनः लक्ष्म्या आश्रीयते ॥ १३४ ॥

यस्मिन्=यत्र जने, चक्षुरारोहयति=चक्षुरारोपयति स्नेहेन यमेवं जनं पश्यतीत्यर्थः । सुते=पुत्रे; उदासीने=मध्यस्थे, अनुरागवैराग्यरहिते, लक्ष्म्याश्रीयते=धनवान् भवति ॥

पुत्र, मन्त्री तथा अपने प्रति उपेक्षाभाव रखनेवाले जिस किसी व्यक्ति पर भी जब राजा अधिक स्नेह दिखाने लगता है तो वह लक्ष्मीपात्र बन ही जाता है ॥

शृणु देव—अप्रियस्यापि पथ्यस्य परिणामः सुखावहः ।

वक्ता श्रोता च यत्रास्ति रमन्ते तत्र सम्पदः ॥१३५॥

अन्वयः—पथ्यस्य अप्रियस्य अपि परिणामः सुखावहः (भवति) यत्र वक्ता च श्रोता अस्ति, तत्र सम्पदः रमन्ते ॥ १३५ ॥

पथ्यस्य=हितकरस्य, वचनस्येति शेषः, परिणामः=फलम्, सुखावहः= सुखदः (भवति), वक्ता=स्वामिने सत्परामर्शप्रदः, श्रोता=अमात्यसत्परामर्शस्य श्रोता, यत्र=राज्ये स्थाने वा, रमन्ते=सानन्दं चिरं तिष्ठन्ति ॥१३५॥

सुनिए राजन्—पथ्य (रोग के समय लिया जाने वाला भोजन) भले ही अच्छा न लगने वाला हो; किन्तु उसका अंतिम फल सुखदायक होता है। और अप्रिय पथ्य के बताने तथा सुनने वाले जहाँ रहते हैं वहाँ सभी प्रकार की सम्पत्ति विराजमान रहती है ॥ १३५ ॥

त्वया च मूलभृत्यानपास्यायमागन्तुकः पुरस्कृतः । एतच्चानुचितं कृतम् । यतः—

त्वया=भवता, पिङ्गलकेन, मूलभृत्यान्=प्रधानसेवकान्, अपास्य=दूरीकृत्य, आगन्तुकः=बहिर्देशादागतः, पुरस्कृतः=अग्रे कृतः, प्रधानत्वेन अभिमत इत्यर्थः, एतत्=आगन्तुकस्य पुरस्करणम् ॥

आपने अपने पुराने सेवकों को छोड़ दिया और इस नये आनेवाले को आगे बढ़ा दिया। यह आपने अनुचित किया। क्योंकि—

मूलभृत्यान्परित्यज्य नागन्तून्प्रतिमानयेत् ।

नातः परतरो दोषो राज्यभेदकरो यतः ॥ १३६ ॥

अन्वयः—(नृपः) मूलभृत्यान् परित्यज्य आगन्तून् न प्रतिमानयेत्, यतः अतः परतरः राज्यभेदकरः दोषः न (अस्ति) ॥ १३६ ॥

मूलभृत्यान्=वंशपरम्परागतप्रधानसेवकान्, आगन्तून्=आगन्तुकान्, न प्रतिमानयेत्=नाद्रियात् । परतरः=महत्तरः, राज्यभेदकरः=राज्यनाशकः ॥

पुराने सेवकों को छोड़कर नये आनेवालों का सम्मान नहीं करना चाहिए। क्योंकि राज्य में भेद उत्पन्न करनेवाला इससे बड़ा और कोई भी दोष नही होता

सिंहो ब्रूते—'किमाश्चर्यम् । मया यदभयवाचं दत्त्वाऽऽनीतः संवर्धितश्च तत्कथं मह्यं द्रुह्यति । 'दमनको ब्रूते—'देव !

अभयवाचम् = अभयवचनम्, मह्यं द्रुह्यति = मां प्रति द्रोहं करोति, 'क्रुद्ध-द्रुहेर्ष्या—' इति द्रुहधातोर्योगे मह्यमित्यत्र चतुर्थीविभक्तिः ॥

सिंह ने कहा—कितने आश्चर्य की बात है ? मैंने ही उसे अभयदान दिया, अपने पास बुलाया, और उसे आगे बढ़ाया फिर वह मुझसे द्रोह क्यों करने लगा ? दमनक ने कहा—

दुर्जनो नार्जवं याति सेव्यमानोऽपि नित्यशः ।
स्वेदनाभ्यञ्जनोपायैः श्वपुच्छमिव नामितम् ॥ १३७॥

अन्वयः—दुर्जनः स्वेदनाभ्यञ्जनोपायैः नामितम् श्वपुच्छम् इव नित्यशः सेव्यमानः अपि आर्जवम् न याति ॥ १३७ ॥

आर्जवम् = सरलताम्, स्वेदनाभ्यञ्जनोपायैः—स्वेदनञ्च = अग्न्युष्णतैलादिना स्विन्नीकरणम्, अभ्यञ्जनम् = तैलमर्दनम्, उपायश्च = वृक्षादिस्कन्धद्वये संस्थाप्य नामनादिरूपश्च, तैः नामितम् = ऋजुत्वार्थं नम्रीकृतम् ॥

देव, नित्य सेवा करते रहने पर भी दुष्ट सीधा नहीं हो सकता । कुत्ते की टेढ़ी पूँछ को सेंक कर कितना ही तेल लगाया जाय लेकिन वह सीधी नहीं होती।

अपरञ्च—स्वेदितो मर्दितश्चैव रज्जुभिः परिवेष्टितः ।
मुक्तो द्वादशभिर्वर्षैः श्वपुच्छः प्रकृतिं गतः ॥ १३८ ॥

अन्वयः—स्वेदितः च मर्दितः एव रज्जुभिः परिवेष्टितः श्वपुच्छः द्वादशभिः वर्षैः मुक्तः (सन्) प्रकृतिं गतः (भवति) ॥ १३८ ॥

स्वेदितः = उष्णतैलादिना स्वेदयुक्तः—यथा वक्रलगुडादिकमृजुं कर्तुं तैलादिना सम्मर्द्य अग्नौ तापयित्वा ऋजुं कुर्वन्ति, तथा कृत इति भावः । मर्दितः = तैलादिना कृतमर्दनः, रज्जुभिः = गुणैः, परिवेष्टितः = संवेष्टितः (रस्सियोंसे लपेटा गया), मुक्तः = त्यक्तः, श्वपुच्छः = कुक्कुरलाङ्गूलम्, प्रकृतिं गतः = पुनर्वक्र एव तिष्ठति ॥ १३८ ॥

और भी—कुत्ते की पूछ सेंकी गई, भली भाँति मली गई और बारह वर्षों तक सीधी करके बंधी रही, किन्तु खोलने पर वह फिर टेढ़ी ही रह गयी ॥

अन्यच्च—वर्धनं वा सम्मानं खलानां प्रीतये कुतः ।
फलन्त्यमृतसेकेऽपि न पथ्यानि विषद्रुमाः ॥ १३९ ॥

अन्वयः—वर्धनम् सम्मानः वा खलानाम् प्रीतये कुतः (भवति) अमृतसेके अपि विषद्रुमाः पथ्यानि न फलन्ति ॥ १३९ ॥

वर्धनम्=संवर्धनम्, सम्मानम्=आदरः, प्रीतये=प्रसन्नतायै, कुतः=कस्मात्कारणात् भवति। अमृतसेके—सुधया सेचने, पथ्यानि—मधुरफलानि, विषद्रुमाः=विषवृक्षाः ॥

और भी—उन्नति या सम्मान भला दुष्ट स्वभाववालों को प्रसन्न कर सकते है ? अमृत से सीचे जाने पर भी विष के वृक्ष सुखदायक फल नही दे सकते ॥

अतोऽहं ब्रवीमि—अपृष्टोऽपि हितं ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत्पराभवम्।
एष एव सतां धर्मो विपरीतमतोऽन्यथा ॥१४०॥

अन्वयः—(सत्सेवकः) यस्य पराभवम् न इच्छेत् (तेन) अपृष्टः अपि हितम् ब्रूयात्, एषः एव सताम् धर्मः (अस्ति), अतः विपरीतम् अन्यथा (अस्ति) ॥ १४० ॥

हितम्=हितकरं वचनम्, यस्य—स्वाम्यादेः, पराभवम्=पराजयम्, एष एव=अपृष्टेऽपि हितकृद्वाक्यकथनमेव। विपरीतमतो०—अस्मात्प्रतिकूलं कथनं सतामधर्मोऽस्तीत्यर्थः ॥

इसीलिए मैं कहता हूँ —

अगर कोई व्यक्ति किसी की हानि नहीं चाहता तो उसे उसके बिना पूछे ही हित की बातें बता देनी चाहिएँ। यही सज्जनों का मार्ग होता है। इसके विपरीत काम करना दुष्टों का काम है ॥ १४० ॥

तथा चोक्तम्—

स स्निग्धोऽकुशलान्निवारयति यस्तत्कर्म यन्निर्मलं
सा स्त्री यानुविधायिनी स मतिमान् यः सद्भिरभ्यर्च्यते।
सा श्रीर्या न मदं करोति स सुखी यस्तृष्णया मुच्यते
तन्मित्रं यदकृत्रिमं स पुरुषो यः खिद्यते नेन्द्रियैः ॥१४१॥

अन्वयः—यः अकुशलात् निवारयति, सः स्निग्धः यत् निर्मलम्, तत् एव कर्म; या अनुविधायिनी, सा स्त्री; यः सद्भिः अभ्यर्च्यते, स मतिमान्; या मदं न करोति, सा श्रीः, यः तृष्णया मुच्यते, सः सुखी, यत् अकृत्रिमत् तत् मित्रम्; यः इन्द्रियैः न खिद्यते, सः पुरुषः (अस्ति; अस्य यथायर्थं सर्वत्र अन्वयः) ॥१४१॥

अकुशलात्—अमङ्गलात्, निवारयति—निवारणं करोति, निर्मलम्—निर्दुष्टम्, अनुविधायिनी=अनुवर्तिनी, अभ्यर्च्यते=आद्रियते, मदम्=गर्वम्, तृष्णया=लोभेन, अकृत्रिमम्, न खिद्यते०=इन्द्रियवशगो न भवति ॥

जैसा कि कहा भी गया है—

वही सच्चा प्रेमी है जो हानि से बचावे, कर्म वही है जो पवित्र हो, स्त्री वही है जो आज्ञा मानने वाली हो, बुद्धिमान वही है जो सज्जनों से पूजित हो, लक्ष्मी वही है, जो घमंड न उत्पन्न होने दे, सुखी वही है जो लालच से मुक्त हो, मित्र वही है जो स्वाभाविक हो, और पुरुष वही है जो इन्द्रियों द्वारा दुखी न बनाया जा सके ।। १४१ ।।

यदि सञ्जीवकव्यसनादितोऽविज्ञापितोऽपि स्वामी न निवर्तते, तदीदृशे भृत्ये न दोषः । तथा च—

सञ्जीवकव्यसनात्=सञ्जीवकोत्पत्स्यमानविपदः, इतः=मत्तः, विज्ञापितः=निवेदितः, न निवर्तते=सञ्जीवकसंसर्गं न त्यज्यति, ईदृशे=एवंविधव्यसने ।।

मेरे इतना निवेदन करने पर भी यदि स्वामी संजीवक के प्रेम से विरत नहीं होते तो इसमें सेवक का कोई भी दोष नहीं है । और भी—

नृपः कामासक्तो गणयति न कार्यं न च हितं
यथेष्टं स्वच्छन्दः प्रविचरति मत्तो गज इव ।
ततो मानध्मातः स पतति यदा शोकगहने
तदा भृत्ये दोषान् क्षिपति न निजं वेत्त्यविनयम् ।।१४२।।

अन्वयः—कामासक्तः नृपः कार्यम् न गणयति, च हितम् न गणयति, (किन्तु) मत्तः गजः इव यथेष्टम् स्वच्छन्दः विचरति, ततः मानध्मातः स यदा शोकगहने पतति, तदा भृत्ये दोषान् क्षिपति, निजम् अविनयम् न वेत्ति ।।१४२।।

कामासक्तः=कामवशीभूतः, कार्यम्=कर्तव्यम्, यथेष्टम्=इच्छानुसारम्, स्वच्छन्दः=स्वतन्त्रः, मान— —गहने=दर्पोन्मत्तः महाशोकग्रस्तो भवति, भृत्ये दोषान् क्षिपति=भृत्यान् सदोषान् वदति, निजम्=स्वकीयम्, अविनयम्=औद्धत्यम् ।।

कामासक्त राजा न तो कार्य की ओर ध्यान देता है न अपना हित ही समझ पाता है वह स्वच्छंद मतवाले हाथी के समान मनमाने ढंग से विचरण करता है (जो भी चाहता है, वह करता है) किन्तु गर्वोन्मत्त होकर शोकरूपी गड्ढेमें गिरने पर सारा दोष सेवकों के मत्थे मढ़ देता है, अपने दोषों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता । अर्थात् राजाओं के पतन का कारण उनका अपना स्वच्छंद व्यवहार ही है ।। १४२ ।।

पिङ्गलकः (स्वगतम्)—

स्वगतम्=स्वचेतसि अन्यमश्रावयन्नित्यर्थः ।

न परस्यापराधेन परेषां दण्डमाचरेत् ।
आत्मनाऽवगतं कृत्वा बध्नीयात्पूजयेच्च वा ।। १४३ ।।

अन्वयः—(राजा) परस्य अपराधेन परेषाम् दण्डम् न आचरेत्, आत्मना अवगतम् कृत्वा (नरम्) बध्नीयात् वा पूजयेत् ।। १४३ ।।

परस्य=अन्यस्य, अपराधेन=दोषेण, परेषां ··· ··· आचरेत्=पराम् दण्डयेत् । आत्मना=स्वयम्, अवगतं कृत्वा=ज्ञात्वा, बध्नीयात्=बन्धनं कुर्यात्; दण्डयेदित्यर्थः, पूजयेत्=आद्रियेत वा ।।

पिंगलक ने—(मन ही मन कहा) किसी दूसरे के अपराध से दूसरों को दंड नहीं देना चाहिए । पहले अपने आप इसे भली भाँति समझ कर ही दंडित या सम्मानित करना चाहिए ।। १४३ ।।

तथा चोक्तम् —गुणदोषावनिश्चित्य विधिर्न ग्रहनिग्रहे ।
स्वनाशाय यथा न्यस्तो दर्पात्सर्पमुखे करः ।।१४४।।

अन्वयः—गुणदोषौ अनिश्चित्य दोषाय ग्रहनिग्रहे न विधिः (कर्तव्यः), यथा दर्पात् सर्पमुखे न्यस्तः करः एव नाशाय (भवति) ।। १४४ ।।

गुणदोषौ=गुणापराधौ, अनिश्चित्य=अनिर्णीय, गुणापराधयोर्निर्णयम् कृत्वेत्यर्थः, ग्रहनिग्रहे=संग्रहणम् (समादरः) दण्डश्च । स्वनाशाय=आत्मनो मरणाय, न्यस्तः=स्थापितः ।।

जैसा कहा भी गया है—गुण या दोष का निश्चय किए बिना अनुगृहीत या दंडित करना उचित नहीं है । ऐसा करना तो अभिमान में आकर अपना ही बिनाश करने के लिए साँप के मुँह में हाथ डालने के समान है ।। १४४ ।।

प्रकाशं ब्रूते-'तदा संजीवकः किं प्रत्यादिश्यताम् ।' दमनकः ससंभ्रममाह-'देव, मा मैवम् । एतावता मन्त्रभेदो जायते । तथा चोक्तम्—

प्रत्यादिश्यताम्=बहिष्क्रियताम्, मयेति शेषः, ससम्भ्रमम्=भयपूर्वकम् । मन्त्रभेदः=मन्त्रणायाः प्रकाशः, जायते=भवति, मन्त्रणा प्रकाशं गच्छति । इत्यर्थः ।।

प्रकट रूप से कहा—तो क्या संजीवक को सेवा से अलग कर दिया जाय ? दमनक ने घबड़ा कर कहा—'देव, ऐसा न करें, इससे मन्त्रभेद हो जायगा । जैसा कि कहा भी है—

मन्त्रबीजमिदं गुप्तं रक्षणीयं यथा तथा ।
मनागपि न भिद्येत तद्भिन्नं न प्ररोहति ॥ १४५ ॥

अन्वयः—गुप्तम् इदम् मन्त्रबीजम् (नृपेण) तथा रक्षणीयम्, यथा मनाक् अपि न भिद्येत, (यतः) भिन्नम् तत् न प्ररोहति ॥ १४५ ॥

मन्त्रबीजम्=मन्त्रणारूपं बीजम्, गुप्तम्=अप्रकाशितम्, मनाक्=स्वल्पम्, तत्=मन्त्रबीजम्, भिन्नम्=प्रकाशं गतम् स्फुटितञ्च । यथाऽस्फुटितं मृदादौ गुप्तमेव बीजमङ्कुरितं भूत्वा पश्चात्फलदं भवति, तथैव सुरक्षितं मन्त्रमपि अन्यरज्ञातं सत् फलप्रदं भवतीत्याशयः ॥

मन्त्र (मंत्री एवं राजा के बीच होने वाली राय बात) रूपी बीज जैसे भी हो सके वैसे गुप्त ही रखना चाहिए । वह जरा भी फूटने न पाए, क्योंकि फूट जाने से वह फिर उग नहीं सकता ॥ १४५ ॥

किं च—आदेयस्य प्रदेयस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ॥ १४६ ॥

अन्वयः—क्षिप्रम् अक्रियमाणस्य आदेयस्य प्रदेयस्य च कर्तव्यस्य कर्मणः रसम् कालः पिबति ॥ १४६ ॥

आदेयस्य=ग्रहणीयस्य, प्रदेयस्य=दानयोग्यस्य, रसम्=फलम्, कालः=समयः । क्षिप्रमक्रियमाणानामादेयादीनां परिमाणः न भवतीति तात्पर्यम् ॥

और भी—लेन, देन तथा कर्तव्य कार्य को शीघ्र ही न कर डालने से उनके रस को समय पी जाता है अर्थात् फिर उनके करने से कोई अच्छा परिणाम नहीं होता ॥ १४६ ॥

तदवश्यं समारब्धं महता प्रयत्नेन सम्पादनीयम् । किञ्च—

समारब्धम्=कृतारम्भं कार्यम्, सम्पादनीयम्=कर्तव्यम् ॥

इसलिए प्रारंभ किए गये कार्य को अत्यन्त परिश्रम के साथ पूरा करना चाहिए । और भी—

मन्त्रो योधः इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि ।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया ॥ १४७ ॥

अन्वयः—संवृतैः अपि सर्वाङ्गैः उपलक्षितः अधीरः योध इव (संवृतैः अपि सर्वांगैः उपलक्षितः) मन्त्रः परेभ्यः भेदशङ्कया चिरं स्थातुम् न सहते ॥१४७॥

मन्त्रः=रहसि द्वाभ्यां कृते गुप्तविचारः, योधः=योद्धा, अधीरः=भीतः, सर्वाङ्गैः=समस्तैर्हस्तवक्षःस्थलाद्यङ्गैः, पक्षे अमात्यादिद्वादशभिः राज्याङ्गैः,

संवृतः=कवचादिनाच्छादितैः, पक्षे तृतीयेन जनेनाज्ञाततया सुरक्षितैः, परेभ्यः= अन्येभ्यः, शत्रुभ्यश्च, भेदशङ्कया=आघातभीत्या, पक्षे प्रकाशनभीत्या। यथा कवचादिनाच्छादितशरीरोऽपि भीरुर्योद्धा स्वाङ्गाघातभयाद् युद्धे चिरं न तिष्ठति, तथैव अमात्यादिद्वादशभी राज्याङ्गैः सुरक्षितोऽपि गुप्तपरामर्शः 'रिपवः ज्ञास्यन्ति इति भयेन चिरकालं न तिष्ठति। अतः शीघ्रं-तदनुसारं कार्यं करणीयमिति भावः।

सभी अंगों से ढके होने पर जिस प्रकार कायर योद्धा शत्रुओं से छिद जाने के भय से देर तक युद्धभूमि में टिक नहीं सकता, उसी प्रकार भली भाँति गुप्त होने पर भी 'मन्त्र' फूट जाने के भय से अधिक समय तक टिक नहीं सकता। १४७।

यद्यसौ दृष्टदोषोऽपि दोषान्निवर्त्य संधातव्यस्तदतीवानुचितम् यतः—

यदि इसके दोषों को जान कर भी आप उन दोनों का ध्यान न करके इससे संधि करना चाहते हों तो यह तो अत्यन्त अनुचित है। क्योंकि—

सकृद्दुष्टं तु यो मित्रं पुनः सन्धातुमिच्छति।
स मृत्युरेव गृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा॥ १४८॥

अन्वयः—यः तु सकृद् दुष्टम् मित्रम् पुनः सन्धातुम् इच्छति, सः अश्वतरं गर्भम् यथा मृत्युम् इव गृह्णाति॥ १४८॥

सकृद्दुष्टम्=एकवारविरुद्धम्, सन्धातुम्=सन्धि कर्तुम्, अश्वतरी=वेसरी, खच्चरी इति यावत्, यथा=इव॥

एक बार भी दुष्टता किए हुए मित्र से जो फिर मेल करना चाहता है वह मृत्यु ही को ग्रहण करता है जैसे खच्चरी गर्भ धारण करके मर जाती है॥

सिंहो ब्रूते—'ज्ञायतां तावत्किमस्माकमसौ कर्तुं समर्थः।' दमनक आह—'देव!—

सिंह ने कहा—'पहले यह मालूम करो कि यह हमारा क्या कर सकता है?' दमनक ने कहा—'देव!

अङ्गाङ्गिभावमज्ञात्वा कथं सामर्थ्यनिर्णयः।
पश्य टिट्टिभमात्रेण समुद्रो व्याकुलीकृतः'॥ १४९॥

अन्वयः—अङ्गाङ्गिभावम् अज्ञात्वा सामर्थ्यनिर्णयः कथम् (कर्तुं शक्यते) पश्य, टिट्टिभमात्रेण समुद्रः व्याकुलीकृतः॥ १४९॥

अङ्गाङ्गिभावम्=अङ्गाङ्गिनोः सम्बन्धम्, सामर्थ्यनिर्णयः=शक्तेः निश्चयः, टिट्टिभमात्रेण=केवलं साधारणेन टिट्टिभ (टिटहरी) पक्षिणैव॥

परस्पर संबन्ध आदि (सहाय्य और सहायक) का ज्ञान किए बिना शक्ति का निर्णय कैसे हो सकता है ? देखो केवल एक टिटिहिरी ने ही समुद्र को व्याकुल कर दिया ॥ १४९ ॥

सिंहः पृच्छति—'कथमेतत् ।' दमनकः कथयति—

सिंह ने पूछा—यह कैसे ? दमनक ने कहा—

कथा ९

दक्षिणसमुद्रतीरे टिट्टिभदंपती निवसतः। तत्र चासन्नप्रसवा टिट्टिभी भर्तारमाह—'नाथ, प्रसवयोग्यस्थानं निभृतमनुसन्धीयताम् ।' टिट्टिभोऽवदत्—'भार्ये, नन्विदमेव स्थानं प्रसूतियोग्यम् ।' सा ब्रूते—'समुद्रवेलया व्याप्यते स्थानमेतत् ।' टिट्टिभोऽवदत्—'किमहं त्वया निर्बलः समुद्रेण निग्रहीतव्यः ।' टिट्टिभी विहस्याह—'स्वामिन्, त्वया समुद्रेण च महदन्तरम् । अथवा—

टिट्टिभदम्पती=जायापती टिट्टिभौ, 'दम्पती जम्पती जायापती' इत्यमरः। आसन्नप्रसवा=सन्निकटप्रसवसमया, भर्तारम्=टिट्टिभम्, प्रसवयोग्यस्थानम्=प्रसूत्यर्हं स्थानम्, निभृतम्=एकान्तम्, सुरक्षितमित्यर्थः, अनुसन्धीयताम्=अन्विष्यताम्, त्वयेति शेषः। समुद्रवेलया=समुद्रतटपयसा (ज्वार भाठा से), व्याप्यते=व्याप्तं भवति, प्लाव्यते इत्यर्थः। निग्रहीतव्यः=पीडितव्यः ॥

दक्षिण समुद्र के किनारे टिटिहिरी का एक जोड़ा रहता था। वहाँ टिटिहिरी ने बच्चा पैदा करने का समय निकट आने पर अपने पति से कहा—स्वामी, बच्चा पैदा करने योग्य एकान्त स्थान की खोज कीजिए। टिट्टिभ ने कहा—प्रिये, यही स्थान बच्चा पैदा करने योग्य है। उसने कहा—यह स्थान समुद्री लहरोंसे भर जाता है। टिटिहरे ने कहा—क्या मैं कमजोर हूँ जो समुद्र मुझे दंड देगा। टिटिहिरी ने हँसकर कहा—स्वामी आप और समुद्र में महान अन्तर है।

पराभवं परिच्छेत्तुं योग्यायोग्यं च वेत्ति यः ।
अस्तीह यस्य विज्ञानं कृच्छ्रेणापि न सीदति ॥ १५० ॥

अन्वयः—यः (नरः) पराभवं परिच्छेत्तुम्, च योग्यायोग्यम् वेत्ति, इह यस्य विज्ञानम् (अस्ति; स नरः) कृच्छ्रेण अपि न सीदति ॥ १५० ॥

पराभवम्=पराभवकारणम्, परिच्छेत्तुम्=दूरीकर्तुम्, योग्यायोग्यम्='योग्यः अयोग्यो वा' इति निर्णयम्, वेत्ति=जानाति, विज्ञानम्=विशिष्टज्ञानम्, कृच्छ्रेण=महाकष्टेन, सीदति=दुःखितो भवति ॥

पराजय बचाने के लिए जो योग्य, अयोग्य का ज्ञान रखता है और जिसे अपने बल का ज्ञान होता है वह विपत्तियों से भी दुखी नहीं होता ॥ १५० ॥

अपि च---अनुचितकार्यारम्भः स्वजनविरोधो बलीयसा स्पर्धा ।
प्रमदाजनविश्वासो मृत्योर्द्वाराणि चत्वारि ॥ १५१ ॥

अन्वयः—अनुचितकार्यारम्भः स्वजनविरोधः बलीयसा स्पर्धा प्रमदाजनविश्वासः (इति एतानि) चत्वारि मृत्योः द्वाराणि (सन्ति) ॥ १५१ ॥

अनुचितकार्यारम्भः—अनुचितस्य=अयोग्यस्य, कार्यस्य=कर्मणः, आरम्भः=आरम्भः, स्वजनविरोधः=स्वबान्धवादिना वैरम्, बलीयसा=अधिकबलवता, स्पर्धा=संघर्षः, प्रमदाजनविश्वासः=स्त्रीजनेषु विश्वासः ॥ १५१ ॥

और भी—अनुचित कार्य का आरम्भ, अपने लोगों से शत्रुता, बलवानों से स्पर्धा, और स्त्री का विश्वास—ये चारों मृत्यु के द्वार हैं ॥ १५१ ॥

ततः कृच्छ्रेण स्वामिवचनात्सा तत्रैव प्रसूता । एतत्सर्वं श्रुत्वा समुद्रेणापि यच्छक्तिज्ञानार्थं तदण्डान्यपहृतानि । ततष्टिट्टिभी शोकार्ता भर्तारमाह--'नाथ, कष्टमापतितम् । तान्यण्डानि मे नष्टानि ।' टिट्टिभोऽवदत्–'प्रिये, मा भैषीः ।' इत्युक्त्वा पक्षिणां मेलकं कृत्वा पक्षिस्वामिनो गरुडस्य समीपं गतः । तत्र गत्वा सकलवृत्तान्तं टिट्टिभेन भगवतो गरुडस्य पुरतो निवेदितम्–'देव' समुद्रेणाहं स्वगृहावस्थितो विनापराधेनैव निगृहीतः ।' ततस्तद्वचनमाकर्ण्य गरुत्मता प्रभुर्भगवान्नारायणः सृष्टिस्थितिप्रलयहेतुर्विज्ञप्तः । स समुद्रमण्डदानायादिदेश । ततो भगवदाज्ञां मौलौ निधाय समुद्रेण तान्यण्डानि टिट्टिभाय समर्पितानि । अतोऽहं ब्रवीमि—'अङ्गाङ्गिभावमज्ञात्वा' इत्यादि । राजाह--'कथमसौ ज्ञातव्यो द्रोहबुद्धिरिति ।' दमनको ब्रूते–'यदासौ सदर्पः शृङ्गाग्रप्रहरणाभिमुखश्चकितमिवागच्छति तदा ज्ञास्यति स्वामी ।' एवमुक्त्वा संजीवकसमीपं गतः । तत्र गतश्च मन्दं मन्दमुपसर्पन् विस्मितमिवात्मानमदर्शयत् । संजीवकेन सादरमुक्तम्–'भद्र ! कुशलं ते ।' दमनको ब्रूते–अनुजीविनां कुतः कुशलम् । यतः—

कृच्छ्रेण=अतिशयप्रबोधनादिना, प्रसूता=प्रसवं कृतवती । तच्छक्तिज्ञानार्थम्=टिट्टिभसामर्थ्यज्ञानाय, तदण्डानि=टिट्टिभ्यण्डानि, अपहृतानि=जलतरङ्गप्लावनेन गृहीतानि । शोकार्ता=शोकपीडिता । कष्टमापतितम्=सहसा दुःखं

समागतम् । पक्षिणां मेलकम्=पक्षिसम्मेलनम्, गरुडस्य=विष्णुवाहनस्य पक्षिराजस्य । सकलवृत्तान्तम्=समस्तवृत्तम्, पुरतः=अग्रे । स्वगृहावस्थः=आत्मनो गृहे स्थितः, विनापराधेन=अपराधं विनेत्यन्वयः, निगृहीतः=पीडितः । तद्वचनम्=टिट्टिभकथनम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, गरुत्मता—गरुतौ=पक्षौ स्तः अस्य इति गरुत्मान् तेन=गरुडेन, प्रभुः=स्वामी, नारायणः=विष्णुः, सृष्टिस्थितिप्रलयहेतुः—सृष्टिः=सर्गश्च, स्थितिः=पालनश्च, प्रलयः=नाशश्चेति सृष्टिस्थितिप्रलयाः, तेषां हेतुः=कारणम्=सृष्टिपालनप्रलयकारक इत्यर्थः; विज्ञप्तः=निवेदितः । अण्डदानाय=अण्डानि दातुम्, आदिदेश=आदिष्टवान्, मौलौ=मस्तके, निधाय=गृहीत्वा, विष्णोराज्ञां शिरोनमनपूर्वकं स्वीकृत्येत्यर्थः, असौ=सञ्जीवकः, द्रोहबुद्धिः=विद्रोही, सदर्पः=गर्वेण सहितः, शृङ्गाग्रप्रहरणाभिमुखः=शृङ्गाग्रेण प्रहर्तुमुद्यतः, चकितः=सभयः । मन्दं मन्दम्=शनैः शनैः, उपसर्पन्=निकटं गच्छन्, विस्मितम्=भीतम् आश्चर्यितम्=प्रदर्शितवान् । अनुजीविनाम्=सेवकानाम्, कुतः=कस्मात् हेतोः, कुशलम्=शिवम् ।।

इसके पश्चात् स्वामी के कहे अनुसार बड़ी कठिनाई से उसने वहीं बच्चा पैदा किया । यह सब सुनकर समुद्र ने भी उसकी शक्ति जानने की इच्छा से उसके अंडों को चुरा लिया अर्थात् लहरों से बहा दिया । तब टिटिहिरी ने शोक से व्याकुल होकर पति से कहा--'नाथ, अब तो विपत्ति आ गई; मेरे अण्डे नष्ट हो गए ।' टिटिहरे ने कहा—प्रिये, मत डरो, ऐसा कहकर वह पक्षियों को इकट्ठा करके उनके राजा गरुड़ के पास पहुँचा । वहाँ उसने भगवान गरुड़ के सामने सारा समाचार कह सुनाया—'देव, समुद्र ने बिना अपराध ही अपने घर में रहने वाले मुझको दंड दिया है ।' उसकी बात सुनकर गरुड़ ने सृष्टि, पालन, तथा विनाश करने वाले भगवान नारायण से निवेदन किया । उन्होंने समुद्र को अंडा देने का आदेश दिया । भगवान की आज्ञा मानकर समुद्रने सभी अंडे टिटिहरे को दे दिये । इसी लिए मैं कह रहा हूँ—'परस्पर संबंध आदि जाने बिना'—इत्यादि । राजा ने कहा—'यह कैसे जाना जाय कि यह मुझसे शत्रुता करता है ?' दमनक ने कहा—'जब यह अभिमान के साथ सींग की नोक से मारने के लिये तैयार-जैसा, उतावलासा होकर आप के सामने आएगा तो स्वामी समझ जायेंगे' । यह कह कर वह संजीवक के पास गया । वहाँ पहुँच कर धीरे-धीरे चलते हुए उसने अपने को कुछ चकित रूप में प्रदर्शित किया । संजीवक ने आदर के साथ कहा कि—'भद्र, कुशल तो है न ।' दमनक ने कहा—'सेवकों का कुशल कहाँ है ?' क्योंकि—

संपत्तयः पराधीनाः सदा चित्तमनिर्वृतम् ।
स्वजीवितेऽप्यविश्वासस्तेषां ये राजसेवकाः ।। १५२ ।।

अन्वयः—ये (नराः) राजसेवकाः सन्ति, तेषाम् (नराणाम्) सम्पत्तयः पराधीनाः, चित्तम् सदा अनिर्वृतम्, स्वजीविते अपि अविश्वासः (भवति) ॥१५२॥

सम्पत्तयः = धनानि, पराधीनाः = राजाधीनाः, अनिर्वृतम् = सुखहीनम् ॥

राजसेवकों का धन सदा दूसरे के हाथ में होता है, चित्त चिन्ता में पड़ा रहता है और उन्हें अपने जीवन का भी विश्वास नहीं होता है ॥ १५२ ॥

अन्यच्च—

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदोऽस्तं गताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को वास्ति राज्ञां प्रियः ।
कः कालस्य भुजान्तरं न च गतः कोऽर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान् ॥१५३॥

अन्वयः—कः अर्थान् प्राप्य न गर्वितः ? कस्य विषयिणः आपदः अस्तं गताः ? भुवि स्त्रीभिः कस्य मनः न खण्डितम् ? वा राज्ञाम् प्रियः कः अस्ति ? च कः कालस्य भुजान्तरम् न गतः ? कः अर्थी गौरवं गतः ? दुर्जनवागुरासु पतितः कः पुमान् क्षेमेण यातः ? ॥ १५३ ॥

अर्थान् = धनानि, गर्वितः = दर्पितः, विषयिणः = विषयासक्तस्य, आपदो = विपदो नष्टाः, विपत्तयो न भवन्ति, खण्डितम् = वशीकृतम्, कालस्य = मृत्योः भुजान्तरं गतः = आलिङ्गितः, कालेन मृत इति यावत्, अर्थी = याचकः, गौरवम् = महत्त्वम् दुर्जनवागुरासु = दुर्जनजालेषु, क्षेमेण यातः = कुशलो स्थितः, न कोऽपि इत्यर्थः ॥

और भी ऐसा कौन व्यक्ति है जो धन को पाकर अभिमानी न बने, ऐसा कौन विषयी है जिसकी आपत्तियाँ दूर हुई हों, इस संसार में ऐसा कौन है जिसका मन स्त्रियों से खण्डित न हुआ हो, कौन ऐसा है जो राजा को प्रिय हो, कौन मृत्यु के हाथों नहीं पड़ा, किस मांगने वाले ने बड़प्पन प्राप्त किया, और ऐसा कौन है, जो दुष्टों के जाल में फँसकर सुख से रहा हो ॥ १५३ ॥

सञ्जीवकेनोक्तम्—'सखे, ब्रूहि किमेतत् ।' दमनक आह—किं ब्रवीमि मन्दभाग्यः ! पश्य—

संजीवक ने कहा—'मित्र, बताओ यह क्या है ?' दमनक ने कहा—'मैं अभागा क्या बताऊँ ? देखो—

मज्जन्नपि पयोराशौ लब्ध्वा सर्पावलम्बनम् ।
न मुञ्चति न चादत्ते तथा मुग्धोऽस्मि सम्प्रति ॥ १५४ ॥

अन्वयः— (यथा कश्चिन्नरः) पयोराशौ मज्जन् अपि सर्पावलम्बनम् लब्ध्वा न मुञ्चति च न आदत्ते, (अहम्) सम्प्रति तथा मुग्धः अस्मि ॥ १५४ ॥

मज्जन् = ब्रुडन्, मग्ने भवन् (डूबता हुआ), पयोराशौ = समुद्रे, सर्पावलम्बनं लब्ध्वा = सर्पं गृहीत्वा, मुञ्चति = त्यजति, आदत्ते = धारयति, गृह्णाति, मुग्धः = मूढः ॥

जैसे समुद्र में डूबता हुआ मनुष्य साँप का सहारा पाकर न तो उसे छोड़ ही पाता है और न पकड़ ही पाता है वैसे ही इस समय मैं भी किंकर्तव्य विमूढ बन गया हूँ ॥ १५४ ॥

यतः—एकत्र राजविश्वासो नश्यत्यन्यत्र बान्धवः।
किं करोमि क्व गच्छामि पतितो दुःखसागरे' ॥ १५५ ॥

अन्वयः—एकत्र राजविश्वासः अन्यत्र बान्धवः नश्यति, दुःखसागरे पतितः किम् करोमि, क्व गच्छामि ? ॥ १५५ ॥

एकत्र = एकस्मिन् भागे (एक तरफ) राजविश्वासः = नृपविश्वासः, नश्यति = विनष्टः भवति, (अस्याग्रेऽपि अन्वयः) बान्धवः = बन्धुः, भवद्रूप इत्यर्थः ॥

क्योंकि—एक ओर राजा का विश्वास नष्ट हो रहा है दूसरी ओर भाई का विनाश आ पहुँचा है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? मैं तो दुख के सागर में पड़ गया हूँ ॥ १५५ ॥

इत्युक्त्वा दीर्घं निःश्वस्योपविष्टः। सञ्जीवको ब्रूते—'मित्र, तथापि सविस्तरं मनोगतमुच्यताम्।' दमनकः सुनिभृतमाह—'यद्यपि राजविश्वासो न कथनीयस्तथापि भवानस्मदीयप्रत्ययादागतः। मया परलोकार्थिनावश्यं तव हितमाख्येयम्। शृणु, अयं स्वामी तवोपरि विकृतबुद्धी रहस्युक्तवान्—'सञ्जीवकमेव हत्वा स्वपरिवारं तर्पयामि।' एतच्छ्रुत्वा सञ्जीवकः परं विषादमगमत्। दमनकः पुनराह—'अलं विषादेन। प्राप्तकालकार्यमनुष्ठीयताम्।' सञ्जीवकः क्षणं विमृश्याह स्वगतम्—'सुष्ठु खल्विदमुच्यते। किं वा दुर्जनचेष्टितं न वेत्येतद् व्यवहारान्निर्णेतुं न शक्यते। यतः—

सविस्तरम् = विस्तरेण सहितम्, मनोगतम् = हृदयस्थं भावम्, सुनिभृतम् = भृशं गुप्तम्, अस्मदीयप्रत्ययात् = आवयोर्विश्वासात्, परलोकार्थिना = स्वर्गाभिलाषुकेन, हितम् = हितवचनम्, आख्येयम् = कथनीयम्। विकृतबुद्धिः = दुष्टबुद्धिः, रहसि = एकान्ते। स्वपरिवारम् = आत्मनो बन्धुवर्गम्, तर्पयामि = तृप्तं करिष्यामि। परम् = अधिकम्, विषादम् = खेदम्। अलं विषादेन = विषादं

मा कुरु। प्राप्तकालकार्यम् = समयानुकूलं कार्यम्। क्षणम् = क्षणमात्रम्, विमृश्य विचार्य। सुष्ठु = समुचितम्। दुर्जनचेष्टितम् = दुष्टचेष्टा ।।

ऐसा कहकर लम्बी साँस खींचते हुए बैठ गया। सञ्जीवक ने कहा—'फिर भी विस्तार के साथ अपने मन की सारी बातें बताओ।' दमनक ने बड़ी नम्रता से कहा—यद्यपि राजा के भेद की बात नहीं कहनी चाहिये, फिर भी आप हमारे विश्वास पर आए हैं। परलोक की अभिलाषा रखने वाला मैं आपके कल्याण की बात अवश्य बताऊँगा। सुनो, हमारे स्वामी इस पिंगलक की नीयत आप के प्रति खराब हो गई है। उन्होंने एकान्त में कहा है कि—संजीवक को ही मार कर अपने कुटुम्बियों को संतुष्ट करूँगा।' यह सुनकर संजीवक बहुत दुखी हुआ। दमनक ने फिर कहा—'आप दुःखी न हों। समय के अनुसार कार्य करें।' संजीवक ने कुछ देर तक विचार करके मन ही मन कहा—यह बहुत ठीक कह रहा है, अथवा यह दुष्टों की चाल है या नहीं, यह तो व्यवहार से नहीं समझा जा सकता है। क्योंकि—

दुर्जनगम्या नार्यः प्रायेणापात्रभृद्भवति राजा।
कृपणानुसारि च धनं देवो गिरिजलधिवर्षी च ।। १५७ ।।

अन्वय—प्रायेण नार्यः दुर्जनगम्याः, राजा अपात्रभृत्, धनम् कृपणानुसारि च देवः गिरिजलधिवर्षी भवति। (अस्य क्रियापदस्य पूर्वस्मिन् वाक्ये 'भवन्ति' इति वचनविपरिणामेनान्वयः) ।। १५६ ।।

दुर्जनगम्याः = दुष्टैर्भोग्याः, नार्यः = स्त्रियः, अपात्रभृत् = कुपात्रपालकः, कृपणानुसारि = कृपणजनगतम्, देवः = मेघः, गिरिजलधिवर्षी = पर्वतसमुद्रयोः वृष्टिकारकः ।।

स्त्रियाँ प्रायः दुर्जनों के पास ही पहुँचती हैं, राजा दुष्टों ही का पालन करने वाला होता है, धन कंजूसों के ही पास रहता है और बादल पहाड़ों पर तथा समुद्र में ही अधिक पानी बरसाते हैं ।। १५६ ।।

कश्चिदाश्रयसौन्दर्याद्धत्ते शोभामसज्जनः।
प्रमदालोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ।। १५७ ।।

अन्वयः—कश्चित् असज्जनः आश्रयसौन्दर्यात् प्रमदालोचनन्यस्तम् मलीमसम् अञ्जनम् इव शोभाम् धत्ते ।। १५७ ।।

आश्रयसौन्दर्यात्—आश्रयस्य = नृपादेः, पक्षे नेत्रयोश्च, सौन्दर्यात् = सरलस्वभावत्वात्, पक्षे लावण्यात्, धत्ते = धारयति, शोभाम् = कान्तिम्, प्रमदालोचनन्यस्तम् = युवतिनेत्रार्पितम्; मलीमसम् = अतिशयेन मलिनम्, अञ्जनम् = कज्जलम् ।।

जैसे स्त्रियों की आँख में लगा हुआ काला भी अञ्जन आँख के सहारे ही शोभा पाता है उसी प्रकार कभी-कभी दुष्ट भी अच्छा सहारा पाकर सुशोभित हो उठता है ।। १५७ ।।

तत्र विचिन्त्योक्तम्। कष्टं किमिदमापतितम्।

इस प्रकार देर तक सोचकर उसने कहा—इतनी बड़ी विपत्ति कैसे आ पड़ी। क्योंकि—

आराध्यमानो नृपतिः प्रयत्नान्न तोषमायाति किमत्र चित्रम्।
अयं त्वपूर्वप्रतिमाविशेषो यः सेव्यमानो रिपुतामुपैति ॥ १५८॥

अन्वयः—प्रयत्नात् आराध्यमानः नृपतिः तोषम् न आयाति अत्र चित्रं किम् (अस्ति)? अयम् तु अपूर्वः प्रतिमाविशेषः (अस्ति), यः सेव्यमानः अपि रिपुतामुपैति ॥ १५८ ॥

आराध्यमानः=सेव्यमानः, प्रयत्नात्=प्रयत्ननेन, तोषमायाति=प्रसन्नो भवति, अपूर्वप्रतिमाविशेषः=प्रागदृष्टमूर्तिविशेषः, रिपुताम्=शत्रुताम्, अयमाशयः—सेव्यमाना अन्या देवादिप्रतिमा प्रसन्ना भवति, किन्तु सेवनेऽपि शत्रुतया राजरूपेयं प्रतिमाऽदृष्टपूर्वेति भावः ॥ १५८ ॥

अत्यन्त परिश्रम के साथ आराधना करने पर भी यदि राजा संतुष्ट नहीं होता तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। यह उसमें एक विचित्र विशेषता है कि सेवा करने पर भी वह शत्रुता मानता है ॥ १५८ ॥

तदयमशक्यार्थः प्रमेयः। यतः—

तत्=तस्मात्कारणात्, सेवनेऽपि शत्रुतागमहेतोः, अशक्यार्थः=कर्तुमशक्यः, प्रमेयः=विषयः ॥

अब इस बात का अनुमान लगाना भी शक्ति से बाहर है। क्योंकि—

निमित्तमुद्दिश्य हि यः प्रकुप्यति
ध्रुवं स तस्यापगमे प्रसीदति।
अकारणद्वेषि मनस्तु यस्य वै
कथं जनस्तं परितोषयिष्यति ॥ १५९ ॥

अन्वयः—हि यः निमित्तम् उद्दिश्य प्रकुप्यति, सः तस्य अपगमे द्रुतम् प्रसीदति, तु यस्य मनः अकारणद्वेषि (भवति), जनः तम् कथम् परितोषयिष्यति? ॥

निमित्तम्=कारणविशेषम्, उद्दिश्य=अभिलक्ष्य, प्रकुप्यति=क्रुध्यति, ध्रुवम्=अवश्यम्, तस्य=निमित्तस्य, अपगमे=नाशे, प्रसीदति=प्रसन्नो, भवति, अकारणद्वेषि=कारण विना द्वेषयुक्तम्, परितोषयिष्यति=सन्तुष्टं करिष्यति, न सन्तुष्टं करिष्यति इत्यर्थः ॥ १५९ ॥

जो व्यक्ति किसी कारण से नाराज होता है, वह उस कारण के दूर हो जाने पर प्रसन्न हो जाता है; किन्तु जिसका मन अकारण ही शत्रु बन जाता है, उसे भला कोई कैसे सन्तुष्ट कर सकता है ॥ १५६ ॥

किं मयापकृतं राज्ञः। अथवा निर्निमित्तापकारिणश्च भवन्ति राजानः।' दमनको ब्रूते—'एवमेतत्। शृणु—

अपकृतम्=अपकारः कृतः, निर्निमित्तापकारिणः=निष्कारणमपकारकाः ॥

मैंने राजा का क्या बिगाड़ा ? अथवा राजा लोग अकारण ही बुराई करने वाले होते हैं।' दमनक ने कहा—'ऐसा ही है। सुनो—

विज्ञैः स्निग्धैरुपकृतमपि द्वेष्यतामेति कश्चित्
साक्षादन्यैरपकृतमपि प्रीतिमेवोपयाति।
चित्रं चित्रं किमथ चरितं नैकभावाश्रयाणां
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ १६० ॥

अन्वयः—कश्चित् विज्ञैः स्निग्धैः उपकृतम् अपि (अगणयित्वा) द्वेष्यताम् एति अन्यैः साक्षात् अपकृतम् अपि (विस्मृत्य) प्रीतिम् एव उपयाति, अथ नैकभावाश्रयाणाम् चरितम् चित्रं चित्रम् (अस्ति), परमगहनः सेवाधर्मः योगिनामप्यगम्यः (भवति) ॥ १६० ॥

विज्ञैः=चतुरैः, स्निग्धैः=स्नेहयुक्तैः, उपकृतम्=उपकारम्, द्वेष्यतामेति=द्विष्यति, द्वेषं करोति। साक्षात्=प्रत्यक्षम्, अपकृतम्=अपकारम्, चित्रं चित्रम्=अतिशयेन विचित्रम्, सम्भ्रमे द्विर्वचनम्, अथ=अथवा, नैकभावाश्रयाणाम्—अत्र 'नैकधे'त्यादिवत् 'न' शब्देन समासः, न तु नञा, अन्यथाऽनेकभावाश्रयाणामित्येवमुच्येत=विविधभाववताम्, सेवाधर्मः=सेवनम्, परमगहनः=अतिकठिनः योगिनाम्=अतीन्द्रियपदार्थानपि प्रत्यक्षं कुर्वताम्, अगम्यः=ज्ञातुमशक्यः ॥

राजा बुद्धिमान तथा प्रेमी सेवक द्वारा उपकृत होने पर भी उससे शत्रुता करने लगता है और अन्य दूसरों द्वारा प्रत्यक्ष अपकार करने पर भी उससे प्रेम करता है, चञ्चल चित्तवालों के कार्य इसी प्रकार निश्चित होते हैं। इसीलिए सेवाधर्म बहुत ही जटिल होता है, जिसका पार पाना योगियों के लिए भी कठिन है ॥ १६० ॥

अन्यच्च—कृतशतमसत्सु नष्टं सुभाषितशतं च नष्टमबुधेषु।
वचनशतमवचनकरे बुद्धिशतमचेतने नष्टम् ॥ १६१ ॥

अन्वयः—असत्सु कृतशतम् नष्टम् (भवति), अबुधेषु सुभाषितशतम् नष्टम् (भवति) अवचनकरे वचनशतम् च अचेतने बुद्धिशतम् नष्टम् भवति ॥

कृतशतम् = कृताः शतसङ्ख्यकोपकाराः, असत्सु = असज्जनेषु, सुभाषितशतम् = शतसङ्ख्यकानि सुभाषितानि, अबुधेषु = मूर्खेषु, वचनशतम् = शतानि कथनानि, अवचनकरे = आज्ञाया अपालके, बुद्धिशतम् = शतं बुद्धयः, अचेतने = चेतनाहीने, नष्टम् = निष्फलम् । 'शतसहस्रशब्दावसङ्ख्यवाचकौ' इति नियमेनात्र सर्वत्र 'शत'शब्दस्यासङ्ख्यवाचके प्रयोगो बोध्यः ॥

और भी—दुष्ट के प्रति किए गए सैकड़ो उपकार व्यर्थ हैं, मूर्खो के प्रति कहे गए सैकड़ों उपदेश व्यर्थ हैं, बात न मानने वालों के प्रति कही गई सैकड़ो बातें फिजूल हैं और अज्ञानी के प्रति सैकड़ों बुद्धि व्यर्थ ॥ १३१ ॥

किञ्च—चन्दनतरुषु भुजङ्गा जलेषु कमलानि तत्र च ग्राहाः ।
गुणघातिनश्च भोगे खला न च सुखान्यविघ्नानि ॥ १६२ ॥

अन्वयः—चन्दनतरुषु भुजङ्गाः, जलेषु कमलानि, च तत्र ग्राहाः, च भोगे गुणघातिनः खलाः (निवसन्ति, अत एव) सुखानि अविघ्नानि न (सन्ति)॥१६२॥

भुजङ्गाः = सर्पाः, ग्राहाः = मकरादयो दुष्टजलजन्तवः, भोगे = विषयादिभोगे, गुणघातिनः गुणनाशकाः, गुणदूषका इत्यर्थः, खलाः = दुष्टाः सन्ति, सुखानि = शर्माणि, 'शर्मशातसुखानि च' इत्यमरः । अविघ्नानि = निर्विघ्नानि । न सन्तीति सम्बन्धः ॥

और भी—चंदन में सांप लिपटा रहता है, जल में कमल के साथ घड़ियाल भी होता है, भोगों में गुण को नाश करने वाले दुष्ट भी हैं । अतः सुख कभी विघ्नों से रहित होता ही नहीं हैं ॥ १६२ ॥

मूलं भुजङ्गैः कुसुमानि भृङ्गैः
शाखाः प्लवङ्गैः शिखराणि भल्लैः ।
नास्त्येव तच्चन्दनपादपस्य
यन्नाश्रितं दुष्टतरैश्च हिंस्रैः ॥ १६३ ॥

अन्वयः—चन्दनपादपस्य मूलम् भुजङ्गैः कुसुमानि भृङ्गैः शाखाः प्लवङ्गैः शिखराणि भल्लैः (आश्रितानि), चन्दनपादपस्य तत् न अस्ति एव, यत् दुष्टतरैः च हिंस्रैः न आश्रितम् (अस्ति) ॥ १६३॥

मूलम्=अधोभागांशः, भुजङ्गैः=सर्पैः, कुसुमानि=पुष्पाणि, भृङ्गैः=भ्रमरैः, शाखाः=लताः, डाली, प्लवङ्गैः=वानरैः, शिखराणि=अग्रभागाः, भल्लैः=भल्लुकैः, दुष्टतरैः=अतिशयेन दुष्टैः, हिंस्रैः=हिंसकैः। सर्वत्र सज्जनानां निकटे दुष्टा व सन्तीति, तत्र सज्जनस्थितिरसम्भवेति भावः ॥

चंदन वृक्ष का ऐसा कोई भी अङ्ग नहीं जिसमें दुष्टों का निवास न हो। उसकी जड़ में साँप, फूलों में भौंरे, डालियों पर बंदर तथा चोटियों पर भालू निवास करते हैं ॥ १६३ ॥

अयं तावत्स्वामी वाचि मधुरो विषहृदयो ज्ञातः। यतः—

स्वामी=पिङ्गलकः, वाचि मधुरः=मधुरभाषी, विषहृदयः=विषवद्दुष्टहृदयः ॥

यह स्वामी बात में मधुर किन्तु हृदय से विष भरा हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि—

दूरादुच्छ्रितपाणिरार्द्रनयनः प्रोत्सारितार्धासनो
गाढालिङ्गनतत्परः प्रियकथाप्रश्नेषु दत्तादरः।
अन्तर्भूतविषो बहिर्मधुमयश्चातीव मायापटुः
को नामायमपूर्वनाटकविधिर्यः शिक्षितो दुर्जनैः ॥१६४॥

अन्वयः—(आगच्छन्तं दृष्ट्वा) दूरात् उच्छ्रितपाणिः आर्द्रनयनः प्रोत्सारितार्धासनः गाढालिङ्गनतत्परः प्रियकथाप्रश्नेषु दत्तादरः, अन्तर्भूतविषः बहिः मधुमयः च अतीव मायापटुः अयम् कः अपूर्वनाटकविधिः दुर्जनैः शिक्षितः नाम ॥१६४॥

दूरात्=दूरत आगच्छन्तं विलोक्य, उच्छ्रितपाणिः=(आह्वानाय) उन्नतकरः प्रोत्सारितार्धासनः=(तदुपवेशनाय) त्यक्तार्धासनभागः, गाढालिङ्गनतत्परः=निर्भराऽऽश्लेषयोद्यतः, प्रियकथाप्रश्नेषु=प्रियचर्चावसरेषु, दत्तादरः=आदरेण कथायाः श्रोता, अन्तर्भूतविषः=हृदि विषयुक्तः, बहिः=बाह्यप्रदेशे, मधुमयः=मधुरतापूर्णः, मायापटुः=मायावी, अपूर्वनाटकविधिः=अदृष्टपूर्वनाटकाभिनयः।

आगत व्यक्ति का दूर ही से हाथ फैला कर स्वागत करना, आँखों में प्रेमाश्रु भर लेना, अपना आधा आसन बैठने के लिए खाली कर देना, प्रगाढ़ आलिङ्गन के लिए तत्पर हो जाना, आदर के साथ मधुर बातचीत तथा कुशल प्रश्न करना भीतर से विषमय किन्तु बाहर से मधुरता दिखाना आदि कपट से भरा हुआ नाटक का कितना विचित्र रूप है जो दुर्जनों द्वारा बराबर खेला जाता है ॥

तथाहि—पोतो दुस्तरवारिराशितरणे दीपोऽन्धकारागमे
निर्वाते व्यजनं मदान्धकरिणां दर्पोपशान्त्यै सृणिः।

इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपायचिन्ता कृता
मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धातापि भग्नोद्यमः ॥१६५॥

अन्वयः—दुस्तरवारिराशितरणे पोतः, अन्धकारागमे दीपः, निर्वाते व्यजनम्, मदान्धकरिणाम् दर्पोपशान्त्यै सृणिः (ब्रह्मणा रचिताः), इत्थम् भुवि तत् न अस्ति, यस्य उपायचिन्ता विधिना न कृता, (किन्तु) धाता अपि दुर्जनचित्तहरणे भग्नोद्यमः जातः (इति) मन्ये ॥ १६५ ॥

दुस्तरवारिराशितरणे=दुस्तरसमुद्रपारगमने, पोतः=जलयानम् (जहाज), अन्धकारागमे=अन्धकारे आगते, दीपः=दीपकः, निर्वाते=वायोरभावे, व्यजनम्=तालवृन्तादिकम् (पङ्खा), मदान्धकरिणाम्=मदान्धगजानाम्, दर्पोपशान्त्यै=दर्पनाशाय, सृणिः=अङ्कुशः, विधिना=ब्रह्मणा, उपायचिन्ता=प्रतीकारचिन्ता, मन्ये=अहं जानामि, दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे—दुर्जनानाम्= दुष्टानाम्, चित्तस्य=मनसः, वृत्तिः=व्यापारः=दुष्टतेत्यर्थः, तस्याः हरणे विनाशने, भग्नोद्यमः=नष्टोद्योगः ॥

जैसा कि—इस पृथ्वी पर ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जिसका उपाय विधाता ने न किया हो। उन्होंने गहरे समुद्र को पार करने के लिए जहाज, अंधकार आने पर दीपक, हवा न चलने पर पंखा, मद से मतवाले हाथियों को वश में रखने के लिए अंकुश आदि का तो निर्माण कर दिया, किन्तु मैं ऐसा समझता हूँ कि दुष्टों का हृदय-परिवर्तन करने में उनका भी साहस टूट चुका है॥१६५॥

संजीवकः पुनर्निःश्वस्य----'कष्टं भोः, कथमहं सस्यभक्षकः सिंहेन निपातयितव्यः। यतः---

निःश्वस्य=दीर्घश्वासं गृहीत्वा, सस्यभक्षकः=तृणखादकः, निपातयितव्यः=हन्तव्यः ॥

संजीवक ने फिर साँस लेकर कहा—'मैं तृणभोजी होकर भी क्या सिंह द्वारा मार ही डाला जाऊँगा ?'

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं बलम् ।
तयोर्विवादो मन्तव्यो नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १६६ ॥

अन्वयः—ययोः एव समम् वित्तम् (भवति), ययोः एव समम् बलम् (भवति), तयोः (एव) विवादः मन्तव्यः (भवति), उत्तमाधमयोः (विवादः) क्वचित् न (मन्तव्यः भवति) ॥ १६६ ॥

समम्=तुल्यम्, वित्तम्=धनम्, विवादः=विरोधः, मन्तव्यः=माननीयः, उचित इति यावत्, उत्तमाधमयोः=श्रेष्ठनीचयोः, क्वचित्=कुत्रचित् ॥

जिनके धन में समानता है अथवा जिनके बल भी समान हैं, उन्ह दोनों में मित्रता या शत्रुता होती है। बडे और छोटे के बीच न तो मित्रता ही होती है न शत्रुता ही ॥ १६६ ॥

(पुनर्विचिन्त्य) केनायं राजा ममोपरि विकारितः न जाने। भेदमुपगताद्राज्ञः सदा भेतव्यम्। यतः ---

विकारितः=विकारयुक्तः कृतः, भेदमुपगतात्=दुर्मन्त्रया भिन्नात् (फोड़े गये) ॥

फिर विचार करके—नहीं मालूम किसने इस राजा को मेरे विरुद्ध कर दिया ? फूटे हुए राजा से सर्वदा डरना चाहिए। क्योंकि---

मन्त्रिणा पृथिवीपालचित्तं विघटितं क्वचित्।

वलयं स्फटिकस्येव को हि संधातुमीश्वरः॥ १६७ ॥

अन्वयः—मन्त्रिणा क्वचित् विघटितम् पृथिवीपालचित्तम् स्फटिकस्य वलयम् इव कः सन्धातुम् ईश्वरः (अस्ति) ॥ १६७ ॥

मन्त्रिणा=यद्वा गुप्तमन्त्रणाकारकेन जनेन, पृथिवीपालचित्तम्=नृपतिमानसम्, विघटितम्=भिन्नं कृतम्, पक्षे=स्फुटितम्, वलयम्=कङ्कणम्, स्फटिकस्य =स्फटिकमणेः, सन्धातुम्=योजयितुम्, ईश्वरः=समर्थः, केनापि स्फुटितं स्फटिकमणिकङ्कणमिव मन्त्रणाकर्त्रा भिन्नं भूपतिचित्तं पुनर्योजयितुं कोऽपि समर्थो नास्तीत्याशयः ॥

जैसे स्फटिक मणि से बने हुए कंकण के टूट जाने पर उसे जोड़ा नहीं जा सकता, उसी प्रकार मंत्री द्वारा तोड़े गये राजा के चित्त को फिर मिलाया नहीं जा सकता ॥ १६७ ॥

अन्यच्च---वज्रं च राजतेजश्च द्वयमेवातिभीषणम्।

एकमेकत्र पतति पतत्यन्यत्समन्ततः॥ १६८ ॥

अन्वयः---वज्रम् च राजतेजः च (एतत्) द्वयम् एव अतिभीषणम् (अस्ति, किन्तु) एकम् एकत्र पतति, अन्यत् समन्ततः पतति ॥ १६८ ॥

वज्रम्=कुलिशम्, 'ह्लादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः।' इत्यमरः, राजतेजः=नृपतितेजः, द्वयम्=उभयम्, अतिभीषणम्=अतिशयेन=भयङ्करम्, एकम्=वज्रम्, एकत्र=एकस्मिन् स्थाने, अन्यत्=राजतेजः, समन्ततः=समन्तात्, सर्वत्र इत्यर्थः ॥

और भी---वज्र और राजा का तेज दोनों ही बड़े भयंकर होते हैं, किन्तु इनमें से एक अर्थात् वज्र तो एक ही जगह गिरता है किन्तु दूसरा तो सब जगह गिरता है ॥ १६८ ॥

ततः संग्रामे मृत्युरेव वरम्। इदानीं तदाज्ञानुवर्तनमयुक्तम्। यतः----

ततः=तस्मात्कारणात्, तदाज्ञानुवर्तनम्=पिङ्गलकादेशानुरूपाचरणम्, अनुचितम्=अयोग्यम् ॥

इसलिए युद्ध में मरना ही श्रेष्ठ है। इस समय उसकी आज्ञा पालन करना उचित नहीं है। क्योंकि---

मृतः प्राप्नोति वा स्वर्गं शत्रुं हत्वा सुखानि वा।
उभावपि हि शूराणां गुणावेतौ सुदुर्लभौ ॥ १६९ ॥

अन्वयः----वा मृतः स्वर्गम् प्राप्नोति, वा शत्रुम् हत्वा सुखानि प्राप्नोति, हि शूराणाम् एतौ उभौ अपि गुणौ सुदुर्लभौ (स्तः) ॥ १६९ ॥

मृतः=युद्धे हतः। उभौ अपि=द्वावपि शूराणाम्=वीराणाम्, सुदुर्लभौ=अतिशयेन दुष्प्राप्तौ ॥

वीर या तो युद्ध में मर कर स्वर्ग पाता है अथवा शत्रु को मार कर सुख पाता है। वीरों के ये दोनों गुण अत्यन्त दुर्लभ होते हैं ॥ १६९ ॥

युद्धकालश्चायम्।

अब तो युद्ध का समय है----

यत्रायुद्धे ध्रुवं मृत्युर्युद्धे जीवितसंशयः।
तमेव कालं युद्धस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १७० ॥

अन्वयः---यत्र अयुद्धे ध्रुवम् मृत्युः (भवति), युद्धे जीवितसंशयः (भवति) मनीषिणः युद्धस्य तम् एव कालम् प्रवदन्ति ॥ १७० ॥

अयुद्धे=युद्धाभावे, ध्रुवम्=निश्चितम्, जीवितसंशयः=जीवने सन्देहः, शत्रुं हत्वा पराजित्य वा जीविताशा भवेत्, मनीषिणः=विद्वांसः ॥

जब लड़ाई न करने में मृत्यु निश्चित हो तथा युद्ध में जीवन के प्रति सन्देह हो, तब बुद्धिमान् लोग उसे ही युद्ध-काल कहते हैं ॥ १७० ॥

यतः---अयुद्धे हि यदा पश्येन्न किञ्चिद्धितमात्मनः।
युध्यमानस्तदा प्राज्ञो म्रियते रिपुणा सह ॥ १७० ॥

अन्वयः---यदा प्राज्ञः अयुद्धे आत्मनः किञ्चित् हितम् न पश्येत्, तदा रिपुणा सह युध्यमानः म्रियते ॥ १७१ ॥

अयुद्धे=युद्धकरणे, हितम्=कल्याणम्, युध्यमानः=युद्धं कुर्वन्, प्राज्ञः=बुद्धिमान्, रिपुणा=शत्रुणा ॥

क्योंकि---बुद्धिमान् जब न लड़ने में कोई भी भलाई नहीं देखता तो वह शत्रु के साथ लड़ते हुए मर जाता है ।। १७१ ।।

जये च लभते लक्ष्मीं मृते चापि सुराङ्गनाम् ।
क्षणविध्वंसिनः कायाः का चिन्ता मरणे रणे ।। १७२ ।।

अन्वयः---(यदा योद्धा युद्धे) जये लक्ष्मीम्, मृतेन अपि सुराङ्गनाम् लभते, (यदा च) कायाः क्षणविध्वंसिनः (एव सन्ति, तदा) रणे मरणे का चिन्ता (अस्ति)? ।। १७२ ।।

जये=विजये, लभते=प्राप्नोति, सुराङ्गनाम्=देवाङ्गनाम्, अप्सरस लभत इत्यर्थः, क्षणविध्वंसिनः=क्षणभङ्गुराः, कायाः=देहाः ।।

जीतने पर लक्ष्मी प्राप्त करता है और मरने पर स्वर्ग में अप्सराएँ मिलती हैं। शरीर तो क्षण भर में ही नष्ट हो जाने वाला है फिर युद्ध में मरने की चिन्ता ही क्या ? ।। १७२ ।।

एतच्चिन्तयित्वा संजीवक आह---'भो मित्र, कथमसौ मां जिघांसुर्ज्ञातव्यः। दमनको ब्रूते---'यदासौ पिङ्गलकः समुन्नतलाङ्गूल उन्नतचरणो विवृतास्यस्त्वां पश्यति, तदा त्वमपि स्वविक्रमं दर्शयिष्यसि। यतः---

जिघांसुः=हन्तुमिच्छुः, ज्ञातव्यः=बोद्धव्यः। समुन्नतलाङ्गूलः=उपरिकृतपुच्छः, उन्नतचरणः=उत्थापितपादः, विवृतास्यः=व्यात्ताननः (मुख बाया हुआ), स्वविक्रमम्=स्वसामर्थ्यम् ।।

यह सोचकर संजीवक ने कहा---'मित्र यह कैसे मालूम होगा कि वह मुझे मार डालना चाहता है ?' दमनक ने कहा---जब पिंगलक पूंछ ऊँचा करके पैरों को उठाकर अपना मुँह खोले हुए तुम्हें देखे तो तुम्हें भी अपना बल दिखाना चाहिए। क्योंकि---

बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम् ।
निःशङ्कं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम् ।। १७३ ।।

अन्वयः---निस्तेजाः बलवान् अपि कस्य अभिभवास्पदम् न (भवति)? पश्य, लोकैः भस्मचये निःशङ्कम् पदम् दीयते ।। १७३ ।।

बलवान्=शूरः, निस्तेजाः=तेजोहीनः, अभिभवास्पदम्=अनादरस्थानम्; लोकैः=जनैः, 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः, भस्मचये=क्षारराशौ ।

बलवान् होते हुए भी तेजहीन व्यक्ति अनादर के पात्र बन जाते हैं। देखो, राख के ढेर में लोग निडर होकर पैर रखते हैं ।। १७३ ।।

किंतु सर्वमेतत्सुगुप्तमनुष्ठातव्यम् । नो चेन्न त्वं नाहम् ।' इत्युक्त्वा दमनकः करटकसमीपं गतः करटकेनोक्तम्----'किं निष्पन्नम् ?' दमनकेनोक्तम्----'निष्पन्नोऽसावन्योन्यभेदः' ।

सुगुप्तम्=अतिगुप्तभावेन, अनुष्ठातव्यम्=कर्तव्यम्, नो चेत्=अन्यथा, सुगुप्तमननुष्ठाने सति, न त्वं नाहम्=त्वमहञ्च मरिष्यावः । निष्पन्नम्=सिद्धम् । असौ=अयम्, अन्योन्यभेदः=परस्परविरोधः ।

किन्तु यह सभी छिपकर करना चाहिए । नहीं तो न तुम बचोगे और न मैं ही । ऐसा कह कर दमनक करटक के समीप गया । करटक ने कहा---'क्या किया ?' दमनक ने कहा--'दोनों के बीच परस्पर भेद उत्पन्न कर दिया ।'

करटको ब्रूते----'कोऽत्र संदेहः । यतः----

करटकने कहा----'इसमें क्या सन्देह ! क्योंकि----

बन्धुः को नाम दुष्टानां कुप्यते को न याचितः ।
को न दृप्यति वित्तेन कुकृत्ये को न पण्डितः ॥ १७४ ॥

अन्वयः--- दुष्टानाम् कः बन्धुः (अस्ति) ?, याचितः (सन्) कः न कुप्यते ? वित्तेन कः न दृप्यति, कुकृत्ये कः न पण्डितः (भवति) ? ॥१७४॥

बन्धुः=बान्धवः, कुप्यते=क्रुध्यति, याचितः=अभ्यर्थितः, धनादिदानार्थं प्रार्थितः, दृप्यति=दर्पं करोति, कुकृत्ये=कुत्सितकर्मणि ॥

दुष्ट का भाई कौन होता है ? माँगने पर क्रुद्ध कौन नहीं होता ? धन से कौन अभिमान नहीं करता और कुकर्म में कौन पंडित नहीं होता ? ॥१७४॥

अन्यच्च—दुर्वृत्तः क्रियते धूर्तैः श्रीमानात्मविवृद्धये ।
किं नाम खलसंसर्गः कुरुते नाश्रयाशवत् ॥ १७५ ॥

अन्वयः—धूर्तैः आत्मविवृद्धये श्रीमान् दुर्वृत्तः क्रियते, खलसंसर्गः आश्रयाशवत् किम् न कुरुते नाम ? ॥ १७५ ॥

दुर्वृत्तः=दुराचारी, धूर्तैः=छलपरैर्दुष्टैः, श्रीमान्= धनवान् नृपादिः, खलसंसर्गः=दुर्जनसङ्गतिः, आश्रयाशवत्---आश्रयम् = स्वावलम्बनं, काष्ठादिकम्, अश्नाति = खादति, भस्मीकरोति इति आश्रयाशः---अग्निः, तेन तुल्यमिति आश्रयाशवत् 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इति वतिप्रत्ययः ॥

और भी----धूर्त अपनी भलाई के लिए बड़ों को भी दुराचारी बना देते हैं । दुष्टों का सङ्ग अग्नि के समान क्या नहीं कर सकता ॥ १७५ ॥

ततो दमनकः पिङ्गलकसमीपं गत्वा 'देव, समागतोऽसौ पापाशयः। ततः सज्जीभूय स्थीयताम्' इत्युक्त्वा पूर्वोक्ताकारं कारयामास। सञ्जीवकोऽप्यागत्य तथाविधं विकृताकारंसिंहं दृष्ट्वा स्वानुरूपं विक्रमं चकार। ततस्तयोर्युद्धे सञ्जीवकः सिंहेन व्यापादितः।

असौ=सञ्जीवकः, पापाशयः=दुराशयः। ततः=तस्मात्, सज्जीभूय=तन्मारणाय सज्जो भूत्वा, पूर्वोक्ताकारम्=उपरिकृतलाङ्गुलपादव्यानमुखम्; विकृताकारम्=दूषिताकृतिम्, योद्धुं दूषितेनासनेन स्थितम्, स्वानुरूपम्=स्वानुकूलम्, विक्रमम्=पराक्रमम्। व्यापादितः=हतः॥

तब दमनक ने पिंगलक के पास जाकर कहा—'देव, वह पापी आया है। अतः आप तैयार हो जायँ। ऐसा कहकर उसने सिंह का वही रूप करा दिया, जैसा उसने संजीवक को बताया था। सञ्जीवकने भी आकर उस प्रकार के बिगड़े रूप वाले सिंह को देखकर अपनी शक्ति के अनुसार बल दिखाया। इसके बाद उन दोनों की लड़ाई में सञ्जीवक सिंह द्वारा मार डाला गया।

अथ संजीवकं सेवकं पिङ्गलको व्यापाद्य विश्रान्तः सशोक इव तिष्ठति। ब्रूते च—'किं मया दारुणं कर्म कृतम्। यतः—

व्यापाद्य=हत्वा, विश्रान्तः=विशेषेण श्रान्तः, सशोकः=शोकयुक्तः। दारुणम्=क्रूरम्॥

इसके बाद पिंगलक अपने सेवक संजीवक को मार कर थके एवं दुखी भाव से बैठ गया और उसने कहा—'मैंने यह कितना भयंकर कार्य कर डाला। क्योंकि—

परैः संभुज्यते राज्यं स्वयं पापस्य भाजनम्।
धर्मातिक्रमतो राजा सिंहो हस्तिवधादिव॥ १७६॥

अन्वयः—राज्यम् परैः संभुज्यते, धर्मातिक्रमतः राजा हस्तिवधात् सिंह इव स्वयम् पापस्य भाजनम् (भवति)॥ १७६॥

परैः=अन्यैर्जनैः, संभुज्यते=भोगः क्रियते, भाजनम्=पात्रम्, धर्मातिक्रमतः=धर्मोल्लङ्घनात्, तथा सिंहेन हतस्य हस्तिनो मांसमन्ये शृगालादयो भुञ्जते सिंहस्तु हस्तिवधजन्यपापभाङ्मात्रं भवति, तथैव राज्यभोगकर्तारः अमात्यादयः सन्ति अधर्मेण राज्यपालने तु राजेव पापभाग्भवति, नान्य इत्यर्थः।

राजा धर्म का उल्लंघन करने के कारण स्वयं वैसे पाप का भागी बनता है जैसे सिंह हाथी को मार कर, किन्तु राज्य का सुख-भोग तो दूसरे ही करते हैं॥

अपरं च—भूम्येकदेशस्य गुणान्वितस्य
भृत्यस्य वा बुद्धिमतः प्रणाशः ।
भृत्यप्रणाशो मरणं नृपाणां
नष्टापि भूमिः सुलभा न भृत्याः' ।। १७७ ।।

अन्वयः—गुणान्वितस्य भूम्येकदेशस्य वा बुद्धिमतः सेवकस्य प्रणाशे भृत्यप्रणाशः नृपाणाम् मरणम् (अस्ति, यतः) नष्टा अपि भूमिः सुलभा (भवति), (नष्टाः) भृत्याः सुलभाः (न भवन्ति) ।। १७७ ।।

गुणान्वितस्य=उर्वरस्य, भूम्येकदेशस्य=पृथ्व्येकभागस्य, बुद्धिमतः=सुधियः, प्रणाशे=विनाशे, समुत्पन्ने इति शेषः, भृत्यप्रणाशः=सेवकमरणम् ।।

और भी—राज्य की उपजाऊ भूमि के किसी एक भाग तथा बुद्धिमान् सेवक के विनाश में बुद्धिमान् सेवक का विनाश राजा की मृत्यु के समान है। क्योंकि नष्ट हुई भूमि तो पुनः सुलभ हो सकती है लेकिन मरा हुआ सेवक नहीं मिल सकता ।। १७७ ।।

दमनको ब्रूते–'स्वामिन्, कोऽयं नूतनो न्यायो यदरातिं हत्वा संतापः क्रियते । तथा चोक्तम्—

नूतनः=नवीनः, अरातिम्=शत्रुम्, संतापः क्रियते=संतप्यते ।।

दमनक ने कहा—स्वामी यह कौन नई राजनीति है जो शत्रु को मारकर दुखी हो रहे हैं। जैसा कि कहा भी है—

पिता वा यदि वा भ्राता पुत्रो वा यदि वा सुहृत् ।
प्राणच्छेदकरा राज्ञा हन्तव्या भूतिमिच्छता ।। १७८ ।।

अन्वयः—यदि पिता वा, भ्राता वा; यदि पुत्रो वा सुहृदा (भवेत्, किन्तु) प्राणच्छेदकरा)एतेऽपि) भूतिम् इच्छता राज्ञा हन्तव्याः (सन्ति) ।। १७८ ।।

प्राणच्छेदकराः=प्राणघातकाः, हन्तव्याः=वध्याः, भूतिम्=सम्पदम्, 'भूतिर्भस्मनि सम्पदि' इति विश्वः । इच्छता=अभिलषता ।।

यदि पिता, भाई, पुत्र या मित्र कोई भी राजा के प्राणों का घात करने वाला बन जाय तो कल्याण चाहने वाले राजा को चाहिए कि वह उसे मार डाले ।।

अपि च—धर्मार्थकामतत्त्वज्ञो नैकान्तकरुणो भवेत् ।
नहि हस्तस्थमप्यन्नं क्षमावान् भक्षितुं क्षमः ।।१९७ ।।

अन्वयः—धर्मार्थकामतत्त्वज्ञः (जनः) एकान्तकरुणः न भवेत्, हि क्षमावान् (जनः) हस्तस्थम् अन्नम् अपि भक्षितुं क्षमः न (भवति) ॥ १७९ ॥

धर्मार्थकामतत्त्वज्ञः—धर्मार्थकामानां सारस्य ज्ञाता, एकान्तकरुणः—केवलं दयालुः, हस्तस्थम्=स्वकरस्थितम्, अन्नम् = भोज्यद्रव्यम्, क्षमावान्=क्षमाशीलः।

और भी—धर्म, अर्थ तथा काम के तत्वज्ञ को सर्वथा दयालु नहीं बनना चाहिए। क्योंकि अधिक क्षमाशील हाथ में रखा हुआ भी भोजन नहीं खा सकता ॥

किं च—क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम् ।
अपराधिषु सत्त्वेषु नृपाणां सैव दूषणम् ॥ १८० ॥

अन्वयः—शत्रौ च मित्रे च क्षमा यतीनाम् एव भूषणम् (भवति), अपराधिषु सत्त्वेषु सा एव क्षमा नृपाणाम् दूषणम् (भवति) ॥ १८० ॥

क्षमा—क्षान्तिः, 'क्षान्तिः क्षमा तितिक्षा च' इत्यमरः। यतीनाम्=श्रवणानाम्, संन्यासिनामित्यर्थः, भूषणम्=अलङ्कारः। अपराधिषु=अपराधयुक्तेषु, सत्त्वेषु=जीवेषु, सा=क्षमा, दूषणम्=दोषः ॥

और भी—शत्रु तथा मित्र को क्षमा करना योगियों का ही आभूषण है। किन्तु अपराधी प्राणियों को क्षमा करना राजा का दोष है ॥ १८० ॥

अपरं च—राज्यलोभादहंकारादिच्छतः स्वामिनः पदम् ।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं जीवोत्सर्गो न चापरम् ॥ १८१ ॥

अन्वयः—राज्यलोभात् अहंकारात् स्वामिनः पदम् इच्छतः तस्य तु एकं प्रायश्चित्तम् जीवोत्सर्गः (अस्ति), अपरम् न (अस्ति) ॥ १८१ ॥

राज्यलोभात्=राज्यतृष्णया, अहंकारात्=दर्पात्, इच्छतः=अभिलषतः, स्वामिनः=प्रभोः, पदम्=स्थानम्, 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः, प्रायश्चित्तम्=तारकम्, एकम्=केवलम्, जीवोत्सर्गः=प्राणत्यागः, मृत्युरित्यर्थः, अपरम्=अन्यत् ॥

और भी—राज्य-लोभ अथवा अभिमान से स्वामी के पद की अभिलाषा करने वाले को मर जाना ही एकमात्र प्रायश्चित है ॥ १८१ ॥

अन्यच्च—राजा घृणी ब्राह्मणः सर्वभक्षी
स्त्री चावज्ञा दुष्प्रकृतिः सहायः ।

प्रेष्यः प्रतीपोऽधिकृतः प्रमादी
त्याज्या इमे यश्च कृतं न वेत्ति ॥ १८२ ॥

अन्वयः—घृणी राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मणः, च अवशा स्त्री, दुष्प्रकृतिः सहायः, प्रतीपः प्रेष्यः, प्रमादी अधिकृतः (एते), च यः कृतम् न वेत्ति, इमे त्याज्याः (सन्ति) ॥ १८२ ॥

घृणी=दयालुः, सर्वभक्षी=सर्वभक्षकः, अवशा=अवशंवदा, दुष्प्रकृतिः= दुष्टस्वभावः, सहायः=सहायकः, प्रेष्यः=भृत्यः, प्रतीपः=प्रतिकूलः, प्रमादी= प्रमादयुक्तः, अधिकृतः=अधिकारी, कृतम्=उपकारम् साधितं कार्यं वा ॥

और भी—कृपालु राजा, सर्वभक्षी ब्राह्मण, स्वैरिणी स्त्री, दुष्ट सहायक, प्रतिकूल सेवक, भूल करने वाले अधिकारी और उपकार न मानने वाले व्यक्ति त्याज्य हैं ॥ १८२ ॥

विशेषतश्च—सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुररत्नधनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा' ॥ १८३ ॥

अन्वयः—नृपनीतिः सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च हिंस्रा दयालुः अपि च अर्थपरा वदान्या च नित्यव्यया प्रचुररत्नधनागमा वाराङ्गना इव अनेकरूपा (भवति) ॥ १८३ ॥

सत्यानृता=सत्या असत्या च, परुषा=कठिना, प्रियवादिनी=मधुरभाषिणी, हिंस्रा=घातुका, दयालुः=करुणावती; अर्थपरा=धनसंग्रहपरायणा, वदान्या=दानवीरा, वाराङ्गना=वेश्या, नृपनीतिः=राजनीतिः, अनेकरूपा=विविधस्वरूपा ॥

विशेष करके—कहीं झूठ कहीं सच तथा कहीं मधुर और कहीं कठोर बोलने वाली, कहीं हिंसक, कहीं दयालु, कहीं स्थायी, कहीं दानी, कहीं नित्य खर्चीली और कहीं अत्यधिक धन जोड़ने वाली वेश्या के समान राजनीति भी अनेक रूपों वाली होती है ॥ १८३ ॥

इति दमनकेन संतोषितः पिङ्गलकः स्वां प्रकृतिमापन्नः सिंहासने समुपविष्टः । दमनकः प्रहृष्टमनाः 'विजयतां महाराजः । शुभमस्तु सर्वजगताम्' इत्युक्त्वा यथासुखमवस्थितः ।

इति=पूर्वोक्त (१८१--१८२ श्लोकोक्त) प्रकारेण, स्वाम्=स्वकीयाम्, प्रकृतिम्=स्वभावम्, आपन्नः=प्राप्तः, स्वस्थ इत्यर्थः, प्रहृष्टमनाः=प्रसन्नचित्तः

विजयताम्—'विपराभ्यां जेः' इति विपूर्वकात् 'जि'धातोरात्मनेपदम्=विजयं करोतु, महाराजः=श्रीमान् पिङ्गलकः, शुभम्=कल्याणम्, सर्वजगताम्=सर्वलोकानाम्, यथासुखम्=सुखपूर्वकम्, अवस्थितः=स्थितमान् ।

इस प्रकार दमनक द्वारा समझाने पर पिंगलक स्वस्थ होकर सिंहासन पर बैठा दमनक प्रसन्न होकर 'महाराज की जय हो, सारे संसार का कल्याण हो' ऐसा कहकर सुख के साथ बैठ गया ।

विष्णुशर्मोवाच—'सुहृद्भेदः श्रुतस्तावद्भवद्भिः । राजपुत्रा ऊचुः—'भवत्प्रसादाच्छ्रुतः । सुखिनो भूता वयम् ।' विष्णुशर्माब्रवीत्—'अपरमपीदमस्तु—

भवत्प्रसादात्=भवतः कृपया, सुखिनः=कल्याणिनः, भूताः=जाताः, वयम्=राजपुत्राः । अपरम्=अन्यत्, इदम्=वक्ष्यमाणम् ॥

विष्णुशर्मा ने कहा—'आप लोगों ने सुहृद्भेद सुन लिया न ।' राजकुमारों ने कहा—'आपकी कृपा से सुन लिया । हम सभी सुखी हुए ।' विष्णुशर्मा ने कहा—'तो उसके अतिरिक्त यह भी हो—

सुहृद्भेदस्तावद्भवतु भवतां शत्रुनिलये
खलः कालाकृष्टः प्रलयमुपसर्पत्वहरहः ।
जनो नित्यं भूयात्सकलसुखसंपत्तिवसतिः
कथारम्भे रम्ये सततमिह बालोऽपि रमताम् ॥१८४॥

इति हितोपदेशे सुहृद्भेदो नाम द्वितीयः
कथासंग्रहः समाप्तः ।

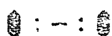
अन्वयः—सुहृद्भेदः तावत् भवताम् शत्रुनिलये भवतु, कालाकृष्टः खलः अहरहः प्रलयम् उपसर्पतु, जनः नित्यम् सकलसुखसम्पत्तिवसतिः भूयात्, इह रम्भे कथारम्भे बालः अपि सततम् रमताम् ॥ १८४ ॥

सुहृद्भेदः=मित्रेषु परस्परं विरोधः, भवताम्=युष्माकम्, शत्रुनिलये=रिपुभवने । कालाकृष्टः—कालेन=मृत्युना, आकृष्टः=वशीकृतः, प्रलयम्=नाशम्, उपसर्पतु=गच्छतु, अहरहः=प्रतिदिनम्, मृत्युवशगो दुष्टो जनः नश्यतु इति भावः । जनः=लोकः, सकलसुखसम्पत्तिवसतिः=सकलानाम्=

सर्वेषाम्, सुखानाम् शर्मणाम् 'शर्मशातसुखानि च' इत्यमरः, सम्पत्तीनाम्= सम्पदाञ्च, वसतिः=आश्रयः, लोकः, सदा समस्तसुखसम्पदाश्रयो भवत्वित्यर्थः। कथारम्भे=कथादौ, रम्ये=रमणीये, सततम्=सदा, बालः=शिशुः अपि—किं पुनर्युववृद्धो इत्यर्थः, रमताम्=रमणं करोतु; आनन्दतु इति तावत् ॥

अङ्केन्दुखाक्षि (२०१९) वर्षेऽद्य निर्जलैकादशीव्रते।
'सुहृद्भेद'स्य सद्व्याख्या पूर्णा जाता 'मणिप्रभा' ॥ १ ॥
अनया 'हरगोविन्दशास्त्रि'कृत्येष्टसाधकः।
अन्नपूर्णाधिपो नित्यं विश्वनाथः प्रसीदतु ॥ २ ॥

इति मिश्रोपाह्व'हरगोविन्दशास्त्रि'कृता हितोपदेशीयप्रकरणस्य
'सुहृद्भेद'स्य 'संस्कृत' व्याख्या समाप्ता ॥
॥ ॐ तत्सत् शिवार्पणमस्तु ॥



सुहृद्भेद आप लोगों के शत्रुओं के घर में हो, काल के वशीभूत हो, दुष्ट प्रतिदिन नष्ट होते रहें, लोग नित्य सभी सुख-सम्पत्ति के घर बनें और मेरे इस रमणीय कथा के आरम्भ में बच्चे भी रमण करते रहें ॥ १८४ ॥

हितोपदेश में सुहृद्भेद नाम का दूसरा कथासंग्रह समाप्त हुआ।



श्लोकानुक्रमणिका

(सुहृद्भेदः)

—: ० :—